हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ५६ वाँ ग्रन्थ ।

मुक्तधारा ।

[अभिनव नाटक ।]

महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके

बंगला नाटकका हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता—

पण्डित धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, तर्कशिरोमणि,

एम० ए०, एम० आर० ए० एस०,

प्रोफेसर मेरठ कालेज ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

माघ, १९८१ वि० ।

फरवरी, १९२५ ई० ।

प्रथमावृत्ति ।] [मूल्य ग्यारह आने ।

सजिल्दका १≈)

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,

मालिक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।

मुद्रक—

मंगेशराव कुलकर्णी,

कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार-बम्बई ।

प्रारम्भिक वक्तव्य।

'मुक्तधारा'के महत्त्वके विषयमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह कविशिरोमणि रवीन्द्रनाथकी रचना है और इसके द्वारा उन्होंने 'भारतका सन्देश' वर्तमान जगतके सामने रक्खा है। पाठकोंको इसमें शायद ऐतिहासिक और काल्पनिक नाटकोंकी-सी रोचकता न मिले; परन्तु उन आधुनिक समस्याओंका—जो राष्ट्रीय और व्यक्तिगत जीवनमें उपस्थित हो रही हैं—ऐसा दार्शनिक और सजीव चित्र इसमें अङ्कित किया गया है कि वह विचारकोंके हृदयको अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहता। यह असंभव है कि इसे पढ़कर विज्ञ पाठक वर्तमान उलझनोंको कुछ गंभीरताके साथ सुलझानेकी ओर प्रवृत्त न हों। आशा है कि भारतकी राष्ट्रीय भाषामें, इस भारतीयताके भावोंसे भरपूर नाटकका यथेष्ट स्वागत होगा।

मई, सन् १९२२ के माडर्न रिव्यू (अँगरेजी मासिकपत्र) में यह नाटक—The Water fall नामसे और लगभग उसी समय प्रवासी (बंगला मासिक-पत्र) में 'मुक्तधारा' नामसे प्रकाशित हुआ था। पहले पहल जब मैंने इसे माडर्न रिव्यूमें पढ़ा तब इसके गंभीर सन्देशका मेरे हृदयपर इतना प्रभाव पड़ा कि मैंने उसी समय इसे एक विस्तृत भूमिकाके सहित हिन्दीमें अनुवाद कर डालनेका निश्चय कर लिया और प्रार्थना करनेपर कवीन्द्रने मुझे इसके अनुवाद करनेकी आज्ञा भी प्रदान कर दी।

यह अनुवाद यद्यपि अँगरेजीपरसे किया गया है; परन्तु बंगला मुक्तधारामें जो बहुतसे अंश अँगरेजीसे अधिक हैं उनको भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। अँगरेजीकी अपेक्षा बंगलाके गीतोंकी संख्या भी अधिक है। इस पुस्तकमें उन गीतोंका अनुवाद भी दे दिया गया है।

इस अनुवादको स्वनामधन्य महामना सी० एफ० एण्ड्रयूजके करकमलोंमें समर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। ये उन गिनेचुने हुए व्यक्तियोंमेंसे हैं जिनके जीवनमें इस नाटकके सन्देशकी झलक विद्यमान है, जिनका जीवन अन्तर्राष्ट्रीय रंगसे रँगा हुआ है, जो जातीय पक्षपातसे शून्य हैं और जिनका विशाल हृदय प्रेम और दयाका बहता हुआ झरना है।

सुना है 'मुक्तधारा'के हिन्दी अनुवाद और भी कई सज्जनोंने किये हैं और उनमेंसे एक दो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले हैं; फिर भी मैं समझता हूँ कि मेरा यह अनुवाद अनावश्यक या अनुपयोगी न होगा। क्योंकि इसमें एक विशेषता है और वह है इसकी आलोचनात्मक भूमिका, जिसमें कवीन्द्रके सन्देश पर विस्तारके साथ विचार किया गया है। मेरा विश्वास है कि उक्त भूमिकासे साधारण पाठक भी इस नाटकके मर्मको सरलतासे समझ सकेंगे।

नाटकोंकी भाषा जैसी परिष्कृत और सजीव होनी चाहिए वैसी शायद इस अनुवादकी नहीं हो सकी है; फिर भी यह त्रुटि बहुत अंशों तक श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी (मालिक, हिन्दीग्रन्थरत्नाकर) के संशोधनसे दूर हो गई है। प्रेमीजीका न केवल इस लिए कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने इस पुस्तकके प्रकाशनका भार अपने ऊपर लिया, प्रत्युत इस लिए भी कि उन्होंने इस नाटकके संशोधन, परिवर्द्धन और भाषाके परिष्कारमें बहुत श्रम किया है। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

यदि चिरगाँवनिवासी सहृदय सुकवि श्रीमान् मुंशी अजमेरीजी गीतोंका इतना अच्छा अनुवादन कर देते तो यह पुस्तक एक प्रकारसे अपूर्ण ही रहती। उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस अनुवादकी द्वितीयावृत्तिमें मुझे स्नातक श्रीदेवसेन और श्रीसुन्दरलाल चतुर्वेदीसे भी बहुमूल्य सहायता मिली है।

अनुवाद पाठकोंके करकमलोंमें अर्पित है। यह आजसे लगभग दो वर्ष पहले तैयार हो चुका था; परन्तु अनेक विघ्न बाधाओंके कारण अब तक प्रकाशित न हो सका। कुछ विलम्बसे ही सही, किन्तु मुझे हर्ष है कि अब यह सुन्दर सुपरिष्कृत रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

मेरठ-कालेज,
१९-१-१९२५ ई०

धर्मेन्द्रनाथ।

जगत्प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके हमारे द्वारा प्रकाशित अन्यान्य ग्रंथ ।

१ **प्राचीन साहित्य**—जगत्प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्राचीन साहित्यसम्बन्धी निबन्धोंका अनुवाद । इसमें १ रामायण, २ धम्मपद, ३ कुमारसंभव और शकुन्तला, ४ शकुन्तला, ५ मेघदूत, ६ कादम्बरीचित्र, ७ काव्यकी उपेक्षिता ये सात निबन्ध हैं और उनमें उक्त प्राचीन ग्रन्थोंकी अपूर्व और विलक्षण आलोचनायें की गई हैं । संस्कृत काव्यके प्रेमियों तथा संस्कृत विद्यार्थियोंके लिए यह एक बड़े कामकी चीज है । संस्कृत न जाननेवाले काव्यप्रेमी भी इन्हें पढ़कर लाभ उठा सकते हैं । मू० ॥-)

२ **राजा और प्रजा**—राजनीतिसम्बन्धी अपूर्व लेख । सब मिलाकर ११ लेख हैं—१ अँगरेज और भारतवासी, २ राजनीतिके दो रुख, ३ अपमानका प्रतिकार, ४ सुविचारका अधिकार, ५ कण्ठरोध, ६ अत्युक्ति, ७ इम्पीरियलिज्म, ८ राजभक्ति, ९ बहुराजकता, १० पथ और पाथेय और ११ समस्या । हमारा विश्वास है कि हिन्दीके राजनीतिक साहित्यमें यह एक अपूर्व चीज समझी जायगी । ये निबन्ध अध्ययन और मनन करनेके योग्य हैं—केवल पढ़ डालनेके नहीं। इनका अनुवाद बहुत सावधानीसे हुआ है । दूसरी बार छपा है । मूल्य० १) रु० सजिल्दका १॥) रु० ।

३ **शिक्षा**—इसमें शिक्षाविषयक,—१ शिक्षा–समस्या, २ आवरण, ३ शिक्षाका हेरफेर, ४ शिक्षा–संस्कार और ४ छात्रोंसे संभाषण ये,–पाँच निबन्ध हैं । निबन्ध बड़े ही महत्त्वके हैं । इन्हें पढ़कर पाठक जान सकेंगे कि हमारी वर्तमान शिक्षापद्धति कैसी है, स्वाभाविक शिक्षापद्धति कैसी होती है, कैसी शिक्षासे बुद्धिविकाश और चरित्रविकाश होता है, अँगरेजी भाषाकी शिक्षासे हमारे बच्चोंकी क्या दुर्दशा होती है, और अब हमें कैसी शिक्षाका प्रचार करना चाहिए । शिक्षातत्त्वको समझनेकी इच्छा रखनेवाले पाठशालाओंके अधिकारियों, अध्यापकों और छात्रोंके मातापिताओंको यह गंभीर निबन्धावली अवश्य पढ़ना और मनन करना चाहिए । मू० ॥)

४ **स्वदेश**—१ नया और पुराना, २ नया वर्ष, ३ भारतका इतिहास, ५ पूर्वीय और पाश्चात्य सभ्यता, ६ ब्राह्मण, ७ समाजभेद, और ८ धर्मबोधका

दृष्टान्त, ये आठ निबन्ध इस पुस्तकमें हैं। अपने देशका असली स्वरूप समझनेवालोंको, उसके अन्तःकरणतक प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको तथा पूर्व और पश्चिमका अन्तर हृदयंगम करनेके लिए उत्कण्ठित विद्वानोंको ये निबन्ध अवश्य पढ़ने चाहिए। हिन्दी संसारने इस पुस्तकका अच्छा आदर किया है और इसका प्रमाण यह है कि यह चार बार छप चुकी है। मू० ॥≈) जिल्ददारका १≈)

५ आँखकी किरकिरी—मूल लेखकके चित्र, चरित्र और ग्रन्थालोचनसहित। हिन्दीमें तो क्या अँगरेजी फ्रेंच जैसी प्रौढ़ भाषाओंमें भी इसकी जोड़का कोई उपन्यास नहीं। मनुष्यके आन्तरिक भावचित्रोंका, उनके उत्थान पतन और घात-प्रतिघातोंका इसमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। यद्यपि इसका कथानक बहुत ही सीधा सादा है, पात्र भी इसमें केवल चार पाँच ही हैं, तो भी ग्रन्थकारमें जो मनुष्य-स्वभावका गंभीर ज्ञान है और उस स्वभावके ज्योंके त्यों चित्र खड़े कर देनेका जो विलक्षण कौशल है, उससे यह उपन्यास बहुत ही मनोवेधक बन गया है। चौथी बार शीघ्र ही छपेगा। मू० १॥≈) सजिल्दका २)

६ समाज—इसमें आठ निबन्ध हैं—१ आचारका अत्याचार, २ समुद्रयात्रा ३ विलासकी फाँसी, ४ नकलका निकम्मापन, ५ प्राच्य और प्रतीच्य, ६ अयोग्य भक्ति, ७ पूर्व और पश्चिम, ८ चिट्ठी पत्री। ये सब निबन्ध ऐसे हैं कि इनकी उपयोगिता कभी नष्ट नहीं हो सकती। इन निबन्धोंके लिए हम यह नहीं कह सकते कि ये पुराने हो गये हैं। इस पुस्तकका प्रत्येक पृष्ठ विचारपूर्ण उपदेशोंसे भरा हुआ है। मनोरंजक भी खूब है। हिन्दीमें समाज शास्त्रपर विचार करनेवाली यही एक पुस्तक गणनीय है। मू० ॥।≈)

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो. गिरगाँव, बम्बई।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज ।

हिन्दी संसारमें नये ढंगके उच्चश्रेणीके ग्रन्थ प्रकाशित करनेवाली सबसे प्रसिद्ध और सबसे पहली ग्रन्थमाला विक्रम संवत् १९६५ से बराबर निकल रही है। नीचे लिखे ५८ ग्रन्थ निकल चुके हैं। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतसे दिये जाते हैं। एक रुपया ' प्रवेश फी ' देनेसे चाहे जो ग्राहक बन सकता है।

१	स्वाधीनता	२)
२	जान स्टुअर्ट मिल	॥≈)
३	प्रतिभा (उप०)	१।)
४	फूलोंका गुच्छा (गल्पें)	॥-)
५	आँखकी किरकिरी	१॥≈)
६	चौबेका चिट्ठा	॥।≈)
७	मितव्ययता	॥।≋)
८	स्वदेश (निबन्ध)	॥≈)
९	चरित्रगठन और मनोबल	≋)
१०	आत्मोद्धार (जीवनी)	१)
११	शान्तिकुटीर	॥।≈)
१२	सफलता	॥।)
१३	अन्नपूर्णाका मन्दिर (उप०)	१)
१४	स्वावलम्बन	१॥)
१५	उपवास-चिकित्सा	॥।)
१६	सूमके घर धूम (प्रहसन)	।)
१७	दुर्गादास (नाटक)	१)
१८	बंकिम-निबन्धावली	॥।≈)
१९	छत्रसाल (उप०)	१॥)
२०	प्रायश्चित्त (नाटक)	।)
२१	अब्राहम लिंकन	॥≈)
२२	मेवाड़-पतन (नाटक)	॥।≈)
२३	शाहजहाँ ,,	१)
२४	मानव-जीवन	१।≈)
२५	उस पार (नाटक)	१≈)
२६	ताराबाई (नाटक)	१॥)
२७	देश-दर्शन	२)
२८	हृदयकी परख (उप०)	॥।≈)
२९	नव-निधि (गल्पें)	॥।)
३०	नूरजहा (नाटक)	१≈)
३१	आयलैंण्डका इतिहास	१॥।≈)
३२	शिक्षा (निबन्ध)	॥)
३३	भीष्म (नाटक)	१।)
३४	कावूर (चरित)	१)
३५	चन्द्रगुप्त (नाटक)	१)
३६	सीता ,,	॥-)
३७	छाया-दर्शन	१।)
३८	राजा और प्रजा	१)
३९	गोबर-गणेश-संहिता	॥)
४०	साम्यवाद	३)
४१	पुष्प-लता	१)
४२	महादजी-सिन्धिया	॥।≈)
४३	आनन्दकी पगडंडियाँ	१॥)
४४	ज्ञान आर कर्म	३)
४५	सरल मनोविज्ञान	१॥)
४६	कालिदास और भवभूति	१॥)
४७	साहित्य-मीमांसा	१।≈)
४८	राणा प्रतापसिंह (नाटक)	१॥)
४९	अन्तस्तल	॥≈)
५०	जातियोंको संदेश	॥-)

५१	वर्तमान-एशिया	२)	५५	अञ्जना (नाटक)	१≈)
५२	नीतिविज्ञान	२।)	५६	मुक्तधारा (नाटक)	।।।)
५३	प्राचीन-साहित्य	।।-)	५७	सुहराब-रुस्तम ,,	।।≈)
५४	समाज	।।।≈)	५८	चन्द्रनाथ (उपन्यास)	।।।)

प्रकीर्णक पुस्तकमाला ।

सीरीजके सिवाय हमारे यहाँसे नीचे लिखी हुई फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित हुई है । ये भी सीरीजके ग्राहकोंको पौनी कीमतमें दी जाती हैं ।

व्यापार-शिक्षा... ...	।।।)	सुगम-चिकित्सा	≈)
युवाओंका उपदेश ...	।।≈)	व्याहीबहू (स्त्रीशिक्षा)...	≋)
शान्ति-वैभव	।-)	श्रमण नारद	≈)
कोलम्बस (जीवनी) ...	।।।)	सदाचारी बालक ...	≈)।।
सन्तान-कल्पद्रुम... ...	१)	दियातले अँधेरा... ...	-)।।
पिताके उपदेश	≈)	भाग्य-चक्र	-)
अच्छी आदतें... ...	≈)।।	विद्यार्थीजीवनका उद्देश्य ...	-)
अस्तोदय और स्वावलम्बन	१≈)	सिंहल-विजय (नाटक)...	१≈)
देवदूत (काव्य) ...	।≈)	पाषाणी ,, ...	।।।)
देवसभा (काव्य) ...	।-)	कर्नल सुरेश विश्वास (जी० च०)	।।)
विधवा-कर्तव्य... ...	।।)	जीवन-निर्वाह... ...	१)
भारत-रमणी (नाटक)...	।।।≈)	भारतके प्राचीन राजवंश(प्रथमभाग)	३)
बूढ़ेका व्याह (काव्य)...	।≈)	,, ,, (द्वितीय)	३।।)
प्राकृतिक चिकित्सा ...	।≈)	सुखदास (प्रेमचन्दकृत उप०)	।।≈)
योग-चिकित्सा	≈)	अरबी काव्यदर्शन ...	१।)
दुग्ध-चिकित्सा	≈)	जननी और शिशु ...	।।≈)

नोट—हमारे यहाँ अन्यान्य प्रकाशकोंके भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ विक्रीके लिए मौजूद रहते हैं । सूचीपत्र मंगाकर देखिये ।

मैनेजर,—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पोष्ट गिरगांव, बम्बई
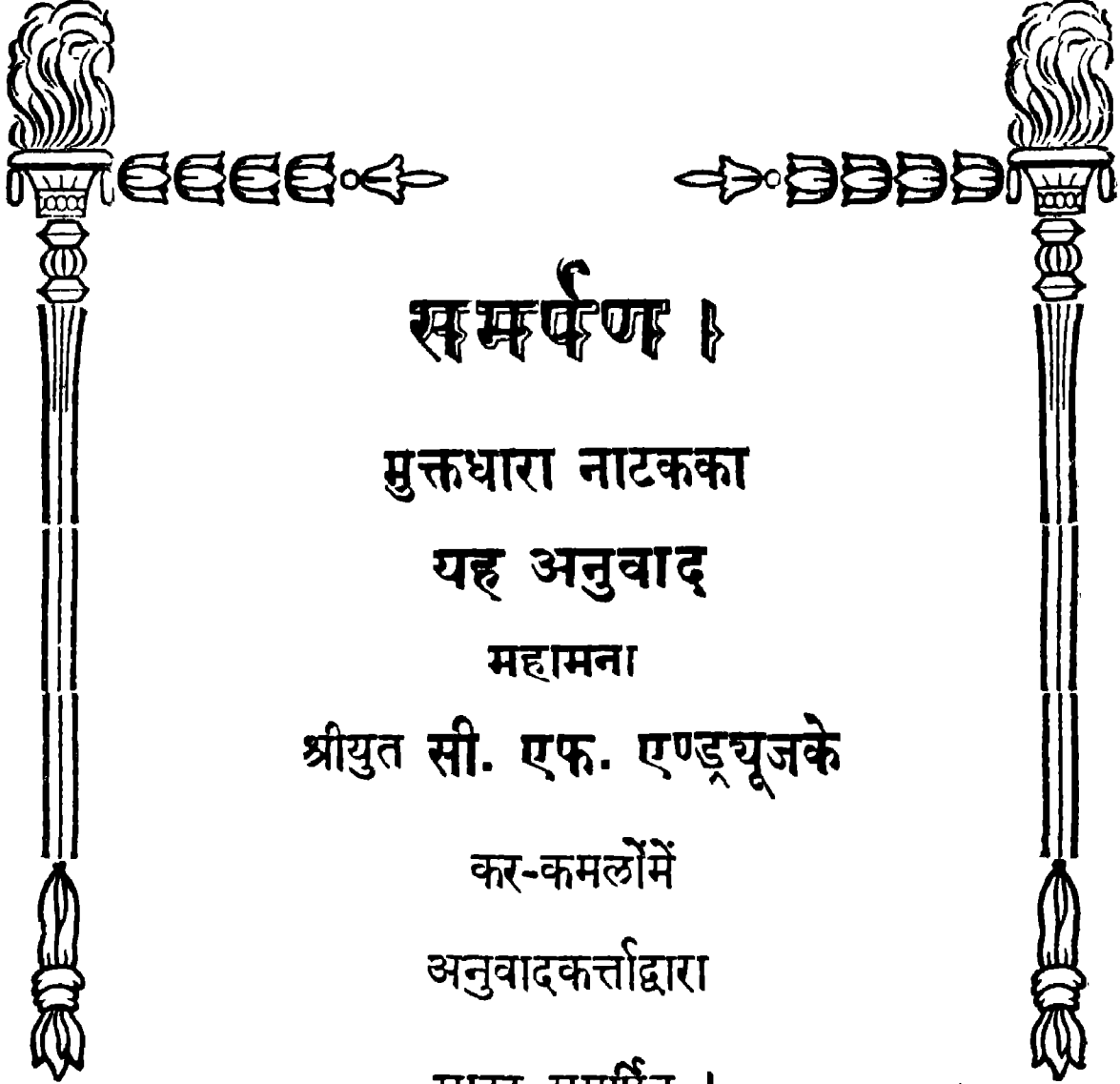
समर्पण ।

मुक्तधारा नाटकका

यह अनुवाद

महामना

श्रीयुत सी. एफ. एण्ड्रयूजके

कर-कमलोंमें

अनुवादकर्त्ताद्वारा

सादर समर्पित ।

समालोचना और नाटकका संक्षेप ।

(एक जर्मन विद्वान द्वारा लिखित ।)

[महामना रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नये नाटक 'मुक्तधारा'की निम्नलिखित समालोचना बर्लिनके सुप्रसिद्ध पत्र "वोसिची जीटङ्ग," (Vosseche Zeitung) के २६ मई १९२२के अङ्कमें प्रकाशित हुई है ।

समालोचनाके पहले पत्रके सम्पादकने लिखा है कि हमारे पत्रके लेखक डा० हेलमथवान ग्लेसनपने—जो कि बर्लिन युनिवर्सिटीके प्रोफेसर और डा० रवीन्द्रनाथके ग्रन्थोंके प्रसिद्ध अनुवादक हैं—हमें भारतीय कविके एक नये नाटककी सूचना दी है जो अब तक किसी भी योरोपीय भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है । उसके विषयमें हमें निम्नलिखित लेख प्राप्त हुआ है ।]

रवीन्द्रनाथका नया नाटक ।

कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले प्रवासीके अप्रैलके अंकमें डा० रवीन्द्रनाथका नया नाटक मूल बङ्गला भाषामें प्रकाशित हुआ है । नाटकका नाम 'मुक्तधारा' अथवा 'स्वच्छन्द प्रवाह' है जो कि एक बड़े जलप्रपातका लाक्षणिक नाम है । मुक्तधारा नाटकीय घटनाओंका केन्द्रस्थल है, उसके आसपास नाटकके सब दृश्य संघटित हैं । वह कहानी—जिसके आधार पर नाटककी रचना हुई है—निम्नप्रकार है:—

" उत्तरकूटके राजा रणजित्‌के इंजीनियर विभूतिने पचीस वर्षके कठिन परिश्रमके बाद एक बड़ा बाँध तैयार किया है जो प्रपातके पानीको शिवतराई राज्यके निम्न प्रदेशमें जानेसे रोकता है । शिवतराईके लोग उत्तरकूटके अधीन हैं, परन्तु बहुधा वे राज्यके विरुद्ध उपद्रव और आन्दोलन करते रहते हैं ।

" राजा रणजित्‌को आशा है कि वह शिवतराईके पानीको रोक कर वहाँके लोगोंको आज्ञावर्ती कर सकेगा । बाँध-यन्त्रके पूरे होनेका उत्सव मनाया जानेवाला है । उसके लिए एक बड़ा प्रारम्भिक उत्सव मुक्तधारा झरनेके समीपमें स्थित भैरवके मन्दिरमें होगा । मन्दिरके पुजारी आकर शिवका स्तोत्र गान करते हैं और दूसरे पात्र उसी समय विभूति और उसके बनाये यन्त्रके विषयमें परस्पर सम्मति प्रकाशित करते हैं ।

" कुछ लोग उसको बड़ा प्रतिभाशाली बतलाकर उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और यन्त्रकी महिमाका स्तुति-गान करते हैं। दूसरे लोग विभूतिकी निन्दा करते हैं और इस बातकी याद दिलाते हैं कि किस प्रकार बाँधको बनानेमें हजारों मनुष्योंके जीवन नष्ट हुए हैं। कुछ राजकीय परिवारके लोग विभूतिको प्रेरणा करते हैं कि वह पानीका बाँध पूरा न करे, जो कि शिवतराईके निवासियोंका भयंकर रूपसे नाशक होगा। परन्तु इन लोगोंकी प्रार्थनाएँ व्यर्थ जाती हैं। शिवतराईके लोगोंका एक डेपुटेशन भी–जो कि धनञ्जय नामक साधुके नेतृत्वमें राजाके सम्मुख उपस्थित होता है–बाँधके रोकनेमें असफल होता है।

" परन्तु राजाके सामने सबसे बड़ी बाधा राजकुमार अभिजित्‌के द्वारा उपस्थित होती है। राजकुमार दूरदर्शी और सारी मनुष्यजातिका हितैषी है। वह इस विचारको नहीं सह सकता कि शिवतराईकी सारी प्रजा उत्तरकूट राज्यके तात्कालिक लाभके लिए नष्ट कर दी जाय।

" एक बार राजाने राजकुमारको शिवतराई भेज दिया था। उस समय वह वहाँ वाइसरायके रूपमें कार्य करता था और अपने देशके स्वार्थकी अपेक्षा वहाँके लोगोंको लाभ पहुँचानेका अधिक यत्न करता था। उन लोगोंको लाभ पहुँचानेकी दृष्टिसे उसने नन्दीघाटीके एक मार्गको–जो अबतक बन्द था–खोल दिया जिससे कि स्वच्छन्दतापूर्वक व्यापार हो सके। उसके शासनमें वे मार्ग खुल गये जिनसे शिवतराईके पराधीन राज्यको जो बहुत समयसे अकालपीड़ित रहता था, अधिकसे अधिक लाभ हो सके; परन्तु जिनके द्वारा उत्तरकूटके शासनकर्ताओंकी आर्थिक दृष्टिसे हानि थी।

" वह भाव जिससे कि राजकुमार यन्त्रराज विभूतिके कामको नष्ट करना चाहता है केवल मनुष्य जातिका उपकार ही नहीं किन्तु उसमें एक गूढ़ रहस्य है। राजकुमार संयोगवश यह सुन चुका है कि वह रणजित्‌का पुत्र नहीं है। उसने सुन रक्खा है कि वह–जब छोटासा बालक था–मुक्तधारा झरनेके पास पड़ा पाया गया था। राजाने उसको गोद लिया था। क्योंकि उसमें संसारके सम्राट् होनेके चिह्न पाये गये थे।

"राजकुमार अनुभव करता है कि वह मुक्तधाराका पुत्र है। उसे झरनेमें एक अपूर्व चमत्कार दीखता है। वह विश्वास रखता है कि झरने और उसके बीचमें

एक निकट आध्यात्मिक सम्बन्ध है। मुक्तधाराका प्रवाह और जीवन उसके अपने जीवनके स्रोत हैं। फलतः ऐसा प्रयत्न करना वह अपना पवित्र कर्तव्य समझता है कि जिससे सब लोग झरनेके प्रवाहका लाभ उठा सकें।

"राजाकी आज्ञासे राजकुमार बन्दी किया जाता है, क्यों कि राजाको विश्वास है कि दण्डित होनेसे राजकुमार सुधर जावेगा। इस बीचमें उत्तरकूटके लोगोंमें बहुत अशान्ति बढ़ जाती है। कुछ नागरिक चाहते हैं कि राजकुमारको इस बातका दण्ड मिले कि उसने अपने लोगोंके विरुद्ध शिवतराईके लोगोंका पक्ष लिया। दूसरे लोग उसे मुक्त कराना चाहते हैं। अन्ततः आग भड़क उठती है जो कि जान बूझ कर लगाई गई थी। इस प्रकार राजकुमार अपनेको बन्दी-गृहसे मुक्त कर लेता है और वह अपने निश्चित उद्देश्यको पूरा करनेके लिए निकल पड़ता है। वह चुपचाप यन्त्रके भीतर घुस जाता है और उसके पुर्जोंको खोल देता है जिससे कि झरनेका पानी अनेक धाराओंमें फूट पड़ता है और यन्त्र नष्ट हो जाता है। इस वीरतापूर्ण कार्यमें राजकुमारकी मृत्यु हो जाती है। वह मृत्युके लिए पूर्वसे ही तैयार था। झरनेको स्वच्छन्द देख कर राजकुमारको अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। वह अपनी माता मुक्तधारा झरनेके गर्भमें पुनः लौट जाता है।"

राजकुमारका दुःखमय अन्त सारे नाटकके रूपकको समझनेकी कुञ्जी है। मनुष्य जातिकी उन्नति तभी संभव है जब कि मनुष्य अपनेको संकुचित स्वार्थोंसे ऊपर उठा सके। जब कि वे लोग जो कि मनुष्य जातिके निर्वाचित नेता हैं, आदर्शके आगे संसारके सारे ऐश्वर्योंका, यहाँ तक कि अपने जीवनका भी, बलिदान करनेमें संकोच न करें।

एक ओर सीमासे आगे अन्ततक पहुँचे हुए जातीयताके भाव हैं जो कि दूसरोंको हानि पहुँचा कर अपना क्षणिक राजनीतिक स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं और दूसरी ओर सारी मनुष्य जातिके प्रति भ्रातृत्वका भाव है। इन दोनों सिद्धान्तोंका इस नाटकमें कई अवसरों पर अच्छी तरह प्रकाश हुआ है। उदाहरणार्थ संकुचित देशभक्तिका प्रतिनिधि एक स्कूलमास्टर अपने विद्यार्थियों सहित रंगमञ्च पर आता है। उसने अपने विद्यार्थियोंको राजा रणजित्की प्रशंसामें एक प्रभावशाली वाक्य याद करा रक्खा है। इस उपायसे स्कूलमास्टर-

को आशा है कि उसका वेतन बढ़ जायगा। उसने अपने विद्यार्थियोंके अन्दर शिवतराईके लोगोंके विरुद्ध अत्यन्त घृणाके भाव भर रक्खे हैं और उन्हें सिखा रक्खा है कि शिवतराईके लोगोंका मज़हब बहुत बुरा है। उसने उन्हें बता रक्खा है कि शिवतराईके लोगोंकी नाक उतनी झुकी नहीं होती जितनी कि उनके समीपवासी उत्तरकूटके लोगोंकी; इसलिए वे लोग अवश्य निकृष्ट हैं। वह अपने बढ़े हुए जोशमें विद्यार्थियोंको निश्चय दिलाता है कि इतिहासका एकमात्र उद्देश्य यह है कि उत्तरकूटका वंश सारे साम्राज्य पर राज्य कर सके।

वह रणजित्के राजवंशका यह ईश्वरप्रदत्त अधिकार समझता है कि वह दूसरे लोगोंपर अपनी शक्तिभर अत्याचार कर सके। वह समझता है कि यह बात वैज्ञानिक सिद्धान्तोंसे सिद्ध है।

साधु धनञ्जय ठीक इसके विपरीत आदर्शको प्रकट करता है। उसकी शिक्षाएँ बहुत सफल नहीं होतीं और लोग उन्हें समझ नहीं सकते; परन्तु वह यह दिखानेका यत्न करता है कि हमें बुराईको यहाँ तक सहन करना चाहिए कि वह स्वयं नष्ट हो जावे। बुराईके द्वारा बुराईका नाश करनेसे फिर नई बुराई उत्पन्न होती है।

साधु धनञ्जयका चरित्र भारतवर्षके वर्तमान नेता महात्मा गाँधीसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। महात्मा गाँधीको अभी कारावास-दण्ड मिला है; परतु स्वयं कविने अपनी एक टिप्पणीमें लिखा है कि मैंने साधुका चरित्र और बहुतसी उक्तियाँ जो इस नाटकमें आई हैं आजसे लगभग १५ वर्ष पहले अपने प्रायश्चित्त नामक नाटकमें लिखी थीं।

रवीन्द्रनाथ टागोरका यह नया बङ्गाली नाटक गम्भीर कथानक और आध्यात्मिक रूपकसे भरपूर है। गद्यके बीच बीचमें कहीं कहीं गीत भी दिये हैं।

भारतकी वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिमें यह निश्चय है कि इस मुक्तधारा नाटकका गहरी रुचिके साथ स्वागत होगा। यह केवल भविष्य बतावेगा कि मञ्च पर यह नाटक कहाँ तक फलीभूत हो सकता है।

भूमिका।

(आलोचनात्मक।) *

सामान्य विवेचन।

बीसवीं सदीकी नई पुकार।

बीसवीं सदीके साथ साथ मनुष्यजातिके इतिहासमें एक नये युगका प्रारम्भ होता है। यूरोपका विश्व-व्यापी महायुद्ध इस नये युगकी भूमिका थी। रक्तपातसे उत्पन्न हुई लालिमा इस नई उषा-की अरुणिमा थी। तोपोंकी गड़गड़ाहट और लोहेकी झङ्कार इस नये युगका विजयनाद था। युद्धके समाप्त होते ही फ्रान्सके दार्शनिक लेखक रोमेन रोलेण्ड (Romain Rolland) ने ' आत्माके स्वातन्त्र्यकी घोषणा ' (Declaration of the Independence of the Spirit) करते हुए बतलाया था कि मनुष्यकी आत्माने अबतक अनेक दासताओंसे स्वतन्त्रता पाई है; परन्तु अब उसे ' राष्ट्रीयता ' की दासतासे मुक्ति पानी है। यह असम्भव है कि ' एक जाति ' और ' एक राष्ट्र ' के नाम पर मनुष्यकी आत्मा राष्ट्रकी सारी बुरी भली आज्ञाओंके सामने, विवेकशून्य होकर गुलाम बनी रहे। मनुष्यकी इस दासताका परिणाम ही यूरोपका महायुद्ध था। ' आत्माकी स्वाधीनता ' के इन अर्थोंको १९ वीं सदीने कभी न समझा था। मेजिनी (Mazzini) के लेखोंमें उनकी केवल गन्ध पाई जाती है। नये युगकी उषा फूटने पर भी पुरानी रातका—१९ वीं सदीका—अन्धकार अभी शेष है; पर संसारका घटनाचक्र बतला रहा है कि इस ' नये युग 'की पुराने पर विजय होगी और नया प्रकाश पुराने अन्धकारको मिटा देगा।

रोलैण्डने अपनी घोषणाके समर्थनके लिए संसारकी श्रेष्ठ आत्माओंको निमन्त्रित किया और भारतके ' कवीन्द्र ' की ओर अपनी अभिलाषापूर्ण दृष्टि दौड़ाई। इधर कवीन्द्रके लेखोंमें उस सन्देशका बीज पहलेसे ही विद्यमान था। जो राग यूरोपीय दार्शनिकोंको यूरोपीय महायुद्धके कुत्सित कोलाहलके बीच सुनाई दिया है उसे 'रवीन्द्र' अपने निर्जन निकुञ्जमें बैठे हुए पहलेहीसे अलाप रहे थे। महा-

---

* यह आवश्यक है कि यह भूमिका नाटक पढ़नेके पश्चात् पढ़ी जावे। यह लेखककी स्वतन्त्र समालोचना है जिसका उत्तरदायित्व सर्वथा उसीपर है।

मुक्तधारा नाटकमें कवीन्द्रने अपना सन्देश सुनाया है। इसमें पाश्चात्य सभ्यताकी उन सारी बुराइयोंके विरुद्ध आवाज उठाई गई है जिनसे वर्त्तमान युग पीड़ित हो रहा है। इसमें एक जातिका दूसरी जातिके प्रति द्वेष रखना, अन्य जातियोंको नष्ट करके अपना स्वार्थसिद्ध करना, साइन्सकी उन्नति और उसके फलस्वरूप मशीन-रीका प्रभाव, यंत्रकलाके प्रसारके कारण गरीबों पर होनेवाले अत्याचार, व्यक्ति-योंका अपने अपने राष्ट्रका सर्वांशमें गुलाम होना, वैज्ञानिकोंका एक तरहसे ईश्वरको चैलेंज देना, आदि सभी बातोंकी चर्चा की गई है। इन बुराइयोंके साथ साथ इनके विरुद्ध नये युगका आदर्श भी दिखलाया गया है। यह नये युगकी भावना (spirit) हमारे हृदय पर ऐसा गहरा असर डालती है कि हम उसमें बिलकुल रँग जाते हैं।

'मुक्तधारा'का सन्देश।

इस नाटकका भारतकी वत्तमान परिस्थितिसे गहरा सम्बन्ध है। यद्यपि कवीन्द्रका उद्देश्य केवल वर्त्तमान परिस्थितिको दिखाना नहीं है, तथापि एक जाति दूसरी जातिको किस प्रकार पददलित कर अपनी मुट्ठीमें बन्द कर रखना चाहती है, यह इसमें बड़ी सुन्दरतासे दिखा दिया है और वह भारतकी वर्तमान दशा पर पूरा पूरा घट जाता है। निस्सन्देह, जैसा कि एक जर्मन समालोचकने भी लिखा है 'भारतकी वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थितिमें इस नाटकका रुचिपूर्वक स्वागत होगा'।

नाटकमें वर्त्त-मान परिस्थिति।

अँगरेजीमें जिसे ड्रामा (Drama) कहते हैं उसको संस्कृत साहित्यमें 'दृश्य काव्य' कहते हैं। उसी दृश्य काव्यके नाटक, प्रकरण आदि अनेक भेद हैं। जब कोई कथानक किसी प्राचीन इति-हाससे लिया जाता है तब वह 'नाटक' कहलाता है और जब वह कविकी कल्पनासे ही उद्भूत होता है तब उसे 'प्रकरण' कहते हैं*। 'मुक्तधारा' का कथानक (प्लाट) स्वयं कविकी कल्पना है, इस लिए यह 'प्रकरण' है न कि 'नाटक'। परन्तु इस समय हिन्दीमें नाटक शब्द व्यापक रूपसे 'ड्रामा'के

मुक्तधारा एक 'प्रकरण' है।

---

* 'नाटक' और 'प्रकरण' में पात्र आदिका भी भेद होता है; परन्तु यहाँ उन सबका विस्तृत वर्णन अप्रासङ्गिक समझकर छोड़ दिया गया है।

लिए प्रसिद्ध हो गया है, अतएव हमने भी 'मुक्तधारा'को नाटक ही मान लिया है।

जिन ग्रन्थोंमें पात्रोंकी कल्पना कुछ विशेष गुणोंके लिए होती है, अर्थात् वे पात्र किसी विशेष गुण (Virtue) के प्रतिरूप (Symbol) होते हैं उन्हें प्रतिरूपक (Allegory) कहते हैं। परंतु जहाँ पात्र केवल गुणोंके प्रतिरूप ही नहीं किन्तु अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं, अर्थात् वे गुणोंके केवल प्रतिरूप (Abstract Symbol) ही नहीं होते प्रत्युत उनकी वास्तविक सत्ता (Concrete existence) भी होती है, वहाँ उन्हें यथार्थ कथानक (Parable) कहते हैं। उनमें गुणोंकी शिक्षा भी होती है, और उन गुणोंको एक जीवित कहानीके द्वारा दिखाया जाता है। इस प्रकार यह नाटक प्रतिरूपक (Allegory) नहीं, किन्तु यथार्थ कथानक (Parable) है।

मुक्तधारा प्रतिरूपक Allegory नहीं है।

नाटकके पात्र और मुख्य मुख्य सिद्धान्त।

नाटकके मुख्य मुख्य सिद्धान्त भिन्न भिन्न पात्रोंकी चरित्ररेखाओंके भीतर रँगे गये हैं। उन्हें पात्रोंसे अलग करके उतनी सुन्दरताके साथ और उतने सजीवित रूपमें दिखाना कठिन होगा, इस लिए यहाँ सिद्धान्तोंका विवेचन चरित्र-वर्णनके साथ साथ ही किया जायगा; पर इसमें इतना बोझ पाठकोंकी कल्पना शक्तिपर ही रहेगा कि वे किसी सिद्धान्तका एक अंश या एक रूप जो एक पात्रमें है, उसमें दूसरा रूप दूसरे पात्रमेंसे मिलाकर पूर्ण चित्र अपने मनःपटल पर तैयार कर लें।

नाटकका नायक युवराज है। नाटकका मुख्य सन्देश इसी युवराजकी जीवनीमें पाया जाता है। मर्त्यलोकमें यदि किसी मनुष्यमें सर्वोच्च आदर्श हो सकता है—जिस अंश तक मानवीय चरित्र उदात्त और अविनिन्दित हो सकता है—तो वह 'युवराज' के चरित्रमें दिखलाई देता है।

नाटकका नायक 'युवराज।'

नाटकका मुख्य सन्देश और युवराजके जीवनका मुख्य रहस्य संक्षेपमें 'स्वच्छन्द असीम स्वाधीनता' है। इस नाटकका 'मुक्तधारा' अर्थात् 'स्वच्छन्दप्रवाहयुक्त धारा' यह नाम ही इस बातको प्रकट करता है। इसमें जिस स्वाधीनताका चित्र है वह कोई संकुचित स्वाधीनता नहीं है। वह केवल राजनीतिक

मुख्य सन्देश।

नहीं है और न केवल एक व्यक्तिकी परिस्थितिकी परम्पराओं और प्रथाओंसे ऊपर उठ जानेहीकी स्वाधीनता है; किन्तु वह सर्वतोमुखी स्वाधीनता है जिसे कवीन्द्र मनुष्य जातिका आदर्श बतलाना चाहते हैं—जिस स्वाधीनताके चरितार्थ होनेपर इस भूतल पर स्वर्गका राज्य आजायगा और संक्षेपतः स्वाधीनताका जो आशय आगामी युगमें—२०वीं शताब्दिमें— होगा। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि स्वाधीनताका ऐसा निरूपण अर्वाचीन युगमें किसी दूसरी लेखनीसे नहीं हुआ है।

नाटकमें स्वाधीनताका निरूपण।

युवराज अभिजित् 'मुक्तधारा' झरनेके पास पड़ा पाया हुआ गया था। उसने जन्मके साथ 'जन्म घुटी' की तरह झरनेके स्वच्छन्द प्रवाहका स्वर्गीय संगीत सुना था। उसके कानोंमें राज-भवनका 'स्वागत संगीत' न पड़ा था। रणजित्का चाचा विश्वजित् कहता है—"मैंने अपने मनमें सोच लिया कि कोई शक्ति इस बालकको बन्दी न बना सकेगी जिसे एक वनवासिनी माताने–उस मुक्तधारा झरनेके पास जिसका स्रोत अदृश्यमें है–जन्म दिया है।" युवराजने भी मन्त्रीसे कह दिया था—"मैं संसारमें मार्गोंको खोलने आया हूँ। यही मेरे जीवनका आन्तरिक उद्देश्य है जिसे मुझे अवश्य पूरा करना चाहिए।" फिर युवराज संक्षेपतः कहता है कि "मैं इस बातको हृदयमें धारण करके ही इस पृथ्वीपर आया हूँ। मेरा जीवनका स्रोत राजमहलके पत्थरोंको हटाकर स्वच्छन्दतासे चला जायगा।"

आन्तरिक जीवनका रहस्य बाह्य जगत्में।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनका एक आन्तरिक रहस्य (Inner Meaning) होता है जिसे उसके जीवनका विशेष उद्देश्य समझना चाहिए और जिसे वह अवश्य पूरा करता है। यह आन्तरिक रहस्य बाह्य जगत्की किसी वस्तु या घटनामें लिखा होता है। बाह्य जीवनमें अपने आन्तरिक रहस्यको पढ़ लेना ही अपने जीवनको समझ लेना है। युवराज संजयसे कहता है:—"विधाता प्रत्येक मनुष्यके आन्तरिक जीवनका रहस्य बाह्य जगत्में कहीं न कहीं अवश्य लिख रखता है। मेरे जीवनके गुप्त रहस्यका संकेत मुक्तधाराके झरनेमें है। जब मैंने देखा कि उसकी गतिको प्रतिरुद्ध करनेके लिए उसके पैरोंमें लोहेकी बेड़ी डाल दी गई तब मैं एकाएक चौंक पड़ा और समझ गया कि यह

उत्तरकूटका सिंहासन ही मेरे स्वच्छन्द प्रवाहको रोकनेवाला बाँध है। मैं इसीलिए निकला हूँ कि उसकी गतिको बाधारहित कर दूँ।" स्वाधीनताके स्वच्छन्द प्रवाहकी सारी बाधाओंको दूर करना उसका उद्देश्य है। वह बार बार कहता है कि जहाँ बाधा है वहाँ सुख कहाँ ?

विशाल साम्राज्यका शासक।

अभिजित्के विषयमें एक बड़े भारी भविष्यद्वक्ताने कहा था कि वह एक विशाल साम्राज्यका शासक होगा। रणजित्ने उस पड़े हुए बालकको उठाकर अपना उत्तराधिकारी बनाते समय सोचा था कि यह उत्तरकूटकी राज्यसीमाको बढ़ावेगा, परन्तु उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि मेरी उक्त आशा व्यर्थ है। चक्रवर्ती सम्राट्का अर्थ युवराजके विषयमें वही था जो बुद्ध भगवान्के चक्रवर्ती सम्राट् होनेकी भविष्यद्वाणीमें था, अर्थात् युवराज उत्तरकूटकी संकुचित सीमाओंमें बन्द न किया जा सकता था। एक राष्ट्रविशेषकी संकीर्णताको उसके हृदयमें स्थान न था। वह सारी मनुष्यजातिकी एकताका स्थापक था और इस प्रकार उसमें एक विशाल साम्राज्यके सम्राट् होनेके चिह्न थे।

भविष्यका सन्देशहर।

युवराज भविष्य युगका सन्देशहर है। वह भविष्य आदर्श युगको देख रहा है। वह गौरीके उच्च शिखरकी ओर देख रहा था। विश्वजित्से उसने कहा कि—"मैं भविष्यके मार्गोंको—जो पर्वतके दुर्गम रास्तोंमें अभी तक नहीं बने हैं-देख रहा था। वे मार्ग दूरको समीप कर देंगे"। यह अन्तर्राष्ट्रीयताका सन्देश है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रसे अलग हो रहा है। एक मनुष्य-जातिके रूपमें वे राष्ट्र मिलकर समीप हो जायँगे। युवराज उन भवि-ष्यके मार्गोंको देख सकता है। वह विश्वजित्के सामने "एक प्रकाशकी लपटके रूपमें प्रकट हुआ। तब उन्हीं मनुष्योंको जिन्हें विश्वजितने अन्धका-रके कारण न देख पा कर चोट पहुँचाई थी अपने आत्मीयोंके समान देखा।" युवराजके प्रकाशसे विश्वजित् उन मनुष्योंको जिन्हें उसने शत्रु समझा था एक मनुष्यताके रूपमें देख सका। राजकुमार उत्तरकूट राष्ट्रकी सीमाको छोड़कर शिवतराईके राष्ट्रको अपनाता है और उसकी कठिनाईको दूर करता है। इस प्रकार वह घृणित और संकुचित राष्ट्रीयताके स्थान पर 'सम्पूर्ण मनुष्यता' का सन्देशहर है।

युवराजने अपने जीवनका आन्तरिक रहस्य समझ लिया है और उसके उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए वह अत्यन्त आतुर है। उसकी आतुरता हमें एकबार शेक्सपीयरके युवराज पात्र 'हैम्लेट' की याद दिला देती है। वह उसके लिए सारी यन्त्रणाओंको सहने और तपस्यामय जीवन व्यतीत करनेको तैयार है। वह इस जीवनके मिठासको जानता है; किन्तु संजयसे कहता है कि "भाई, मधुरका मूल्य देनेके लिए ही कठिनकी साधना आवश्यक है।" किसी प्रकार वह अपने उद्देश्यसे नहीं हिल सकता। उसे मुक्तधाराके बाँधको तोड़नेसे रोकनेके विषयमें विश्वजित्का सारा प्रयत्न व्यर्थ होता है। वह कह देता है कि आज मुझे न प्रेम रोक सकता है और न क्रोध। अस्तकालीन सूर्यने—जो 'अग्निमय पक्षी' है—उसके आगे उसके कर्त्तव्यका चित्र खींच दिया है। वह अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए अपने जीवनका समर्पण करना चाहता है। विभूतिके बनाये हुए बाँधमें दो एक कमजोर स्थान हैं जहाँसे यन्त्र खुल सकता है—परन्तु ऐसा करनेसे खोलनेवालेका जीवन नहीं बच सकता। यह जानकर भी राजकुमार बाँधके समीप जा कर उसे खोल देता है और झरनेके प्रबल प्रवाहमें बहकर अपना बलिदान कर देता है और इस प्रकार अपने जीवनके अन्तिम उद्देश्य और अपनी माता—मुक्तधारा झरने—के ऋणको चुकाता है।

उद्देश्यपूर्त्तिमें आत्मसमर्पण।

ध्यानसे विचार करने पर स्पष्ट हो जायगा कि युवराजमें कवीन्द्रकी ही व्यक्ति झलक रही है। कवींद्रका सन्देश युवराजके जीवनमें चरितार्थ हो रहा है। वह यन्त्रनिर्मित बाधाको दूर करके स्वाधीनता स्थापित करना चाहता है। गतवर्ष यूरोपसे भेजे हुए कवीन्द्रके कुछ पत्र 'माडर्न रिव्यू' (Modern Review) में छपे थे। उनमेंसे एकमें उन्होंने लिखा था कि "शान्तिनिकेतनको विश्वभारती—के रूपमें परिणत करते समय जो संगठनकी मशीन तैयार होगी उसके विरुद्ध मेरी 'कवि स्वच्छन्दता' आघात पहुँचाती है। वह किसी कल्पित बाधाको नहीं सह सकती।" इसी प्रकार युवराज भी किसी बाधाको सहन नहीं कर सकता है। युवराजके जीवनमें कवीन्द्रका सन्देश पाया जाता है। यह उनकी 'आदर्श' कल्पना है।

कवीन्द्रका अपना स्वरूप।

धनञ्जय वैरागीकी व्यक्ति इस नाटकमें कदाचित् युवराजसे कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। धनंजयके चरित्र-चित्रणको देखते ही आधुनिक युगके अवतार महात्मा गान्धीका स्मरण हो आना अनिवार्य है। यद्यपि स्वतः कवीन्द्र अपनी टिप्पणीमें कहते हैं कि "धनञ्जय साधुका कथोपकथन और उसका चरित्र आजसे पन्द्रह वर्ष पहले लिखे गये मेरे प्रायश्चित्त नामक नाटकसे लिया गया है" तो भी धनञ्जय और महात्मा गान्धीकी समता इतनी स्पष्ट है कि यही ज्ञात होता है कि मानों कवीन्द्रने महात्मा गान्धीका ही चित्र खींचा हो। समता किसी एक ही बातमें नहीं है प्रत्युत सारे चरित्रमें है। धनंजयके चरित्रकी विवेचना इस बातको भली भाँति स्पष्ट कर देती है।

धनञ्जय।

धनञ्जयका अहिंसा भाव।

धनंजयके चरित्रका सबसे मुख्यरूप 'अहिंसा' ही है। जहाँ कहीं वह कुछ भी बोलता है 'अहिंसा' का भाव वहाँ अवश्य रहता है। किसीको चोट न पहुँचाना और स्वयं अपने ऊपर चोट सहना उसके जीवनके रागका ध्रुवपद है। वह शिवतराईके लोगोंको समझाता है कि "लहरोंपर डाँड़ मारनेसे लहरें नहीं रुक सकतीं; परन्तु पतवारको स्थिर कर रखनेसे उनपर विजय प्राप्त की जा सकती है"। फिर वह उन्हें आदेश करता है-"सिर ऊँचा करके ज्योंही यह कह सकोगे कि हमें मारकी चोट नहीं लगती त्यों ही मारकी संकल टूट जायगी"। महात्मा गाँधीके समान वह उन्हें समझाता है कि उनके अन्दर घृणा और द्वेषका कोई भाव न आना चाहिए। धनञ्जय लोगोंसे कहता है कि "तुम मेरे तात्पर्यको नहीं समझते, क्यों कि तुम्हारे नेत्र क्रोधसे रक्त हो रहे हैं और तुम्हारी वाणी-में मधुर स्वर नहीं है"। वस्तुतः वैरागी मन, वचन और कर्म तीनों प्रकारकी हिंसा और द्वेष भावके विरुद्ध आवाज उठाता है। उसकी अहिंसा वैसी ही उच्च और पवित्र है जैसी बुद्ध भगवान् और महात्मा गाँधीकी।

निर्भयता।

एक प्रसिद्ध लेखकके शब्दोंमें महात्मा गाँधीके चरित्रका रहस्य यह है कि उन्हें किसीसे द्वेष नहीं और इसीलिए वे किसीसे डरते भी नहीं। धनञ्जय कहता है:—"तुम लोग मन ही मन औरोंको मारना चाहते हो, इसीलिए डरते हो। परन्तु मैं किसीको मारना नहीं चाहता इसीलिए डरता भी नहीं हूँ। जिसके हृदयमें

हिंसा रहती है भय उसके पीछे लगा रहता है।" परन्तु धनञ्जय निर्भयताके बड़े गहरे अथा तक पहुँचता है। उसके विचारसे दूसरोंको चोट पहुँचाना भी एक कायरता है। वह शिवतराईके नागरिकोंसे कहता है–"तुम चोटसे बचनेके लिए या तो दूसरोंको चोट पहुँचाते हो या भाग जाते हो। परन्तु ये दोनों ही प्रकार समान रूपसे कायरताके हैं। इन दोनोंहीसे पशुता प्राप्त होती है।" धनंजय कहता है "मैं उन लोगोंका बोझा सिरपर रखकर नहीं चल सकूँगा जो स्वयं डरते और दूसरोंको डराते हैं।"

आत्मिक शक्तिमें विश्वास।

वह शरीरके साथ साथ क्रियात्मक जीवनमें 'आत्मा' और उसकी शक्तिको मानता है। जहाँ शरीरमें चोट आदिकी पीडा पहुँचती है वहाँ आत्मा इन सब कमजोरियोंसे परे है। वह कहता है—"जो वास्तविक मनुष्य है उसके चोट नहीं लगती–क्योंकि वह दीपशिखाके तुल्य है। चोट लगती है जानवरको, क्योंकि वह मांसपिण्ड है, मार खाकर चिल्ला उठता है।" धनंजय इस शरीरसे परे आत्माकी शक्तिपर विश्वास रखना सिखाता है।

ईश्वरके दृढ़ विश्वासकी आवाज धनंजयके प्रत्येक रोमकूपसे निकल रही है।

ईश्वरनिष्ठा और प्रभुको समर्पण।

वह सब कुछ प्रभुको अर्पण करता है। सारे कष्टोंको वह प्रभु द्वारा की गई परीक्षा मानता है और जितने भी कष्ट आते हैं उनको परीक्षाका अवसर समझ हर्षपूर्वक सहता है और बार बार अपने गीतोंमें प्रभुको सम्बोधन करके कहता है कि जितनी चाहें परीक्षायें लो, मैं विचलित न होऊँगा और दुःखोंमें हार न मानूँगा। जब राजा रणजित् कहता है कि तुम्हारे तो कपालमें ही दुःख है तो धनंजय उसका उत्तर देता है कि "जो दुःख कपालमें था उसे मैंने छातीपर रख लिया है और दुःखोंके ऊपर रहनेवाला उसी स्थानपर निवास करता है।" धनंजयका विश्वास है कि जो कुछ हो रहा है वह प्रभुकी प्रेरणासे। हमें अपने सारे कर्म प्रभुके अर्पण कर देने चाहिए। यही भाव है जो कई बार महात्मा गाँधीके लेखोंमें आया है। उन्होंने इसी समर्पणके आवेशमें लिखा था 'I am Clay in Potter's Hand'—मैं कारीगरके हाथमें मिट्टीके समान हूँ। धनञ्जय समझता है कि मेरी पीडाको भी प्रभु ही सहन करते हैं। शिवतराईके लोगोंको शान्त करते हुए वह कहता है

"यदि वह प्रभु—जिसे मैंने अपना यह शरीर समर्पण कर दिया है,—सहन कर लेगा तो तुम भी सह लोगे।" वैरागी उत्तरकूटके लोगोंको बार बार बतलाता है कि "यह जीवन प्रभुका दिया हुआ उपहार है। उस प्रभुका ऋण प्रत्येक पर है जो उसे चुकाना होगा।" धनञ्जय शिवतराईके लोगोंको बार बार कहता है कि मैं "तुम्हें उस ऋणसे उऋण नहीं कर सकता। ईश्वरका सहारा लेना चाहिए। वही आन्तरिक प्रेरणासे मार्ग दिखायगा।" शिवतराईके लोग राजसिंहासनके लिए दावा करते हैं। उसके विषयमें भी वह कहता है "जब तक तुम इस सिंहासनको उस प्रभुका नहीं समझते तब तक इस पर किसीका भी दावा नहीं चल सकता—राजाका भी नहीं और प्रजाका भी नहीं।" इस प्रकार सब कुछ प्रभुके अर्पण कर देना और उसमें निष्ठा रखना आदर्श है।

प्रजाके अधिकार।

धनञ्जय सर्व साधारणके अधिकारोंका बड़ा समर्थक है। उसने शिवतराईके लोगोंको राजकर देनेसे रोक दिया है और वह राजाके सामने कहता है कि वह कर तुम्हारा नहीं है—अर्थात् तुम्हारा उस पर कोई अधिकार नहीं। "जो अन्न प्रजाके खानेसे बचता है उसी पर आपका अधिकार है; परन्तु उसके भूखके अन्नको आप नहीं ले सकते।" कर रोकनेकी बात महात्मा गाँधीके खेड़ेके सत्याग्रहकी घटनाको कैसी अच्छी तरह स्मरण करा देती है!

सर्वसाधारणकी धनञ्जयमें भक्ति।

धनंजयमें शिवतराईके लोगोंकी असीम भक्ति है। वह भक्ति और श्रद्धा अन्ध विश्वास तक जा पहुँचती है। उसकी समता भी महात्मा गाँधीके प्रति सर्वसाधारणकी भक्तिसे भली भाँति की जा सकती है। वे प्रत्येक बातमें धनंजयके उपर निर्भर हैं और उसीकी आज्ञाको मानते हैं। उन्हें धनंजयकी अलौकिक शक्ति पर विश्वास है। उनमेंसे एक कहता है कि "धनंजयका एक शरीर मन्दिरमें और एक बाहिर है।" उन्हें दृढ विश्वास है कि धनंजयके रहते इमें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता और धनंजयको पकड़नेकी भी किसीमें शक्ति नहीं। ये बातें भी, महात्मा गाँधीके विषयमें वर्तमान भारतीय जनताके जो भाव हैं उनकी, समानता करती हैं।

कवीन्द्रने इस भक्तिको अन्धविश्वासका रूप धारण किये हुए बतलाया है। वे लोग न तो धनञ्जयके उच्च अहिंसा भावका ही पालन कर सकते हैं और न धनंजयके गहरे तर्कको ही समझते हैं। शिवतराईका एक मनुष्य वैरागीसे कहता है कि "हम तो आपको समझते हैं। आपकी बातको भले ही न समझें।" यही कारण है जो धनंजयके लगातार यत्न करने पर भी वे दूसरे राष्ट्र उत्तरकूटके प्रति घृणा और बदलेके भाव दूर नहीं कर सकते।

धनञ्जयके पीछे शिवतराईका बुद्धिशून्य अनुसरण।

लोगोंमें इतनी भक्ति होते हुए भी धनंजयको निराशा होने लगती है। वह लोगोंके सामने कहता है:—" तुमलोग मुझे जितना ही पकड़ कर चिपटते हो, उतना ही सीखा हुआ तैरना भूल जाते हो और मेरा भी पार होना कठिन हो जाता है। इसीलिए छुट्टी चाहता हूँ और वहाँ जाता हू जहाँ कोई मेरे पीछे न आसके।" निराशा बढ़ती ही जाती है। धनंजय लोगोंसे कहता है— "मैं पराजित हो चुका हूँ। अब मैं विश्राम लेना चाहता हूँ।...तुम इस बातसे प्रसन्न होते हो कि तुमने मुझे पा लिया, परन्तु नहीं समझते कि तुम अपनेको खो रहे हो।" धनंजय अनुभव करता है कि लोग अन्धे होकर उसके पीछे चलनेके कारण अपनी बुद्धि खो बैठे हैं—यहाँतक कि उन्होंने ईश्वरको भी भुला दिया है, क्योंकि वे धनंजय तक ही रुक जाते हैं, ईश्वर तक नहीं पहुँचते। वह कहता है—"मुझे उस समय सचमुच बहुत ही दुःख होता है। मनमें आता है कि पृथ्वीमें समा जाऊँ। वे अपनी सारी पूजा—जो ईश्वरके लिए थी—मुझ पर ही समाप्त करके एक प्रकारसे दिवालिये हो गये हैं।" लोगोंकी बुद्धि परिपक्व न होनेके विषयमें वह कहता है "मैंने जितना ही उन्हें उत्तेजित किया है उतना ही कम उनकी बुद्धिको परिपक्व होने दिया है।" लोगोंकी मानसिक स्वतन्त्रता दूर हो जानेकी धनंजयको यहाँ तक चिन्ता है कि वह कहता है कि— "यदि यह सत्य है कि मैंने उनकी मानसिक स्वतन्त्रतामें एक बाँध डाला है तो मुझे डर है कि भगवान् भैरव मुझे और तुम्हारे विभूतिको एक साथ दण्ड देंगे।"

असफलता और निराशा।

लोगोंकी मानसिक स्वतन्त्रता और बुद्धि छिन जानेके विषयमें जो कुछ लिखा गया है उसे पढ़कर स्वभावतः ही सन्देह होता है कि इसमें कवीन्द्रने महात्मा गाँधीकी ओर संकेत किया है; विशेषकर उस दशामें जब कि इस नाटकके प्रकाशित होनेसे कुछ दिवस पूर्व ही वर्तमान आन्दोलन पर कवीन्द्रने यह आक्षेप किया था कि लोग बुद्धिशून्य होकर अन्धविश्वासके साथ महात्माजीका अनुसरण करते हैं। परन्तु वर्तमान आन्दोलनमें लोग बुद्धिरहित होकर महात्माजीके पीछे चलते हैं या नहीं, यह बात विचारणीय अवश्य है।

महात्मा गाँधीकी ओर संकेत।

युवराज और धनंजयकी तुलनाके विषयमें यह कहना अत्युक्तियुक्त न होगा कि जहाँ पहलेमें कवीन्द्रकी व्यक्ति झलक रही है वहाँ दूसरेमें महात्मा गाँधीका चित्र है। दोनोंका भेद इन दोनों व्यक्तियोंसे समझमें आ सकता है। युवराजका आदर्श निस्सीम स्वाधीनता है और धनंजयका शुद्ध सार्वभौम अहिंसा। धनंजयके जीवनमें जो असफलता और निराशा प्रकट की गई है उसे हम भारतीय आन्दोलनके विषयमें अभी स्वीकार करनेको तैयार नहीं हो सकते। एक और भी भेद है। धनंजय ईश्वरकी भक्ति और आत्मार्पणमें मस्त है, पर युवराज अदृश्य शक्तिके विषयमें रहस्यमय (Mystic) बातोंकी ओर संकेत करता है। धनंजयका ईश्वरविश्वास सर्वसाधारणके लिए उपयोगी है; परन्तु युवराजका रहस्यमय संकेत एक दार्शनिक और कविका है।

युवराज और धनंजय।

महत्त्वकी दृष्टिसे नाटकमें तीसरा पात्र विभूति हो सकता है। वह युवराजका प्रतिद्वन्द्वी है। वह 'स्वाधीनता' का घातक है। उसने झरनेके स्वच्छन्द प्रवाह पर बाँध लगा दिया है। इसका गहरा अर्थ इस बातकी ओर संकेत कर रहा है कि आधुनिक विज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली मशीनरीने मनुष्यकी स्वाधीनता पर बाँध लगा दिया है। विभूति साइन्सके युगमें मनुष्यकी प्रकृति पर विजयका सूत्रपात करता है। वह ईश्वरके कामको अपने हाथमें लेना चाहता है। उसे मनुष्यकी मस्तिष्क शक्ति पर भरोसा है। वह ईश्वरसे नहीं डरता। नये युगमें शेक्सपीयर और टेनिसनके समान वह साइन्सके विजयनादका गीत गाता है और प्रकृति पर मनुष्यके अधिकारकी घोषणा करता है—" मेरा उद्देश्य रेती, जल, और पत्थरों पर,—जो कि मानों मनुष्यकी शक्तिके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे—मनुष्यको

विभूति।

विजय प्राप्त कराना था।" उसे ईश्वरका डर नहीं है। खुले शब्दोंमें वह ईश्वरको चैलेञ्ज देता है। सूर्य और तारोंके बीच मानों उन्हें चिढ़ानेके लिए उसने अपनी मशीन खड़ी की है। एकबार रणजित् और उत्तरकूटके लोग भी घबड़ा जाते हैं;–पर विभूति निडर है। वह कहता है—"मेरी मशीनने न जाने कितनी माताओंके शाप पर विजय पाई है। जो ईश्वरकी शक्तिसे लड़ सकता है वह मनुष्यके अभिशापसे नहीं डरता।" उसने मशीनके काममें बहुतसे बालकों और युवकोंको लगा कर उनकी जीवनलीला समाप्त कर दी। उसे इसके लिए न दुःख है और न डर; क्यों कि वह 'राष्ट्रीयवाद'को माननेवाला है। प्रत्येक व्यक्तिको राष्ट्रके काममें आना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति 'राष्ट्रीय' काममें नष्ट हो जावे तो उसे इसकी परवाह नहीं। लछमन, सुमन, बटुके पुत्र बनवारी आदि पर मशीनके काममें मनमाना अत्याचार होता है। इस प्रकार कवीन्द्रने यन्त्रकला द्वारा होनेवाले अत्याचारोंकी ओर भी संकेत किया है। अपने 'राष्ट्रीयवाद' के सिद्धान्तके कारण ही वह एक दूसरे राष्ट्र शिवतराईके जलको रोक कर उन्हें प्याससे मार डालनेमें जरा भी नहीं हिचकता है। एक राष्ट्रके रूपमें दूसरे राष्ट्र पर अत्याचार करना पाप नहीं समझा जाता।

रणजित्के चरित्रमें किसी अंशतक स्वेच्छाचारी राजाकी और विशेषकर

रणजित्। राष्ट्रीयवादकी बुराइयाँ प्रकट की गई हैं। युवराजकी स्वच्छन्द स्वाधीनतामें उत्तरकूटका सिंहासन भी बाधक है। राजा उसे उत्तरकूट तक ही सीमित करके संकीर्ण बनाना चाहता है। वह उत्तरकूटकी राष्ट्रीयताके पोषणके लिए शिवतराई पर सारे अत्याचार करनेको तैयार है। वह समझता है कि शत्रुराष्ट्रको डराकर ही वशमें किया जा सकता है, इसलिए वह अपने मन्त्रीकी प्रेमकी नीतिका खण्डन करता है। रणजित्के हृदयमें कभी कोई उच्च भाव उठता ही नहीं। वह समझता है कि दूसरे राष्ट्रोंके सताने और उनपर विजय पानेकी योजनाओंमें प्रभु भी साथ है,–इसलिए वह यन्त्र बनकर तैयार होनेके उपलक्ष्यमें भैरवका उत्सव रचता है। वह व्यक्तियोंको राष्ट्रका गुलाम समझता है। नाटकके अन्तिम भागमें बनवारी नामक मनुष्य यह कह कर कि "शिवतराईके लोगोंसे मेरा कोई विरोध नहीं है," नन्दीघाटीके द्वारको बन्द करनेमें काम नहीं करना चाहता। उसे रंगरूटोंका भर्ती करनेवाला उत्तर देता है कि–"उत्तरकूट एक बड़ा राष्ट्र है। उसके अंशरूप रहकर जो कार्य तुम्हारे द्वारा होगा उसके लिए किसी तरहकी जवाबदारी तुम्हारे ऊपर नहीं

रहती।" इसमें कवीन्द्रका उस सिद्धान्तकी ओर संकेत है जिसके अनुसार व्यक्ति राष्ट्रके नामपर सब बुरे भले काम करते हैं और यदि व्यक्ति राष्ट्रके काममें आजावे तो उसका जीवन सफल समझा जाता है। इसीलिए वह सुमनकी माताको अपने पुत्रके लिए विलाप करते देखकर कहता है कि "पृथिवीमें जो सबकी अपेक्षा चरम दान है, उसे तुम्हारे पुत्रने पा लिया है।"

विदेशीय शासनकी निन्दा।

उत्तरकूट और शिवतराईका सम्बन्ध कुछ कुछ अँगरेज और भारतीयोंसे मिलता जुलता है। उत्तरकूटके राजा और प्रजा दोनोंकी शक्ति शिवतराई पर अत्याचार करनेमें तुली हुई है। दोनों राष्ट्रोंके लोगोंमें परस्पर एक दूसरेके लिए घृणाके भाव बढ़ रहे हैं। एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त–'भलाई करते हुआ भी विदेशी शासन बुरा है'–अभिजित्की एक उक्तिमें दर्शाया गया है। उद्धवने अभिजित्से कहा कि क्या हमारे महाराज शिवतराई पर दया नहीं दिखाते? उत्तरमें युवराज अभिजित् कहता है—"दायें हाथसे कृपणताके साथ दानका द्वार बन्द करके बाँयें हाथसे वदान्यता दिखाना कोई अर्थ नहीं रखता।——दयाके ऊपर निर्भर रहनेवाली दीनताको मैं नहीं देख सकता।" यहाँ वस्तुतः एक मौलिक सिद्धान्त दिखाया गया है। विदेशी राज्य चाहे कितनी भी भलाइयाँ करे, पर अपने अधीन देशको अपने ऊपर निर्भर बनाता है, इसलिए वह हानिकारक है। क्या ठीक यही समस्या हमारे और अँगरेजोंके बीच उपस्थित नहीं है?

शिक्षाके द्वारा राष्ट्रीयताके घृणित भाव।

रणजित् जहाँ स्कूलके अध्यापक तथा विद्यार्थियोंसे मिलता है वहाँ भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार विद्यार्थियोंके अन्दर दूसरे राष्ट्रके लिए घृणाके भाव भरे जाते हैं। अध्यापक समझता है कि राष्ट्रको बनानेका उत्तरदायित्त्व शिक्षा पर ही है। वह विद्यार्थियोंको सिखाता है कि "शिवतराईके लोग घृणित हैं। क्यों कि उनका धर्म गन्दा है। प्रोफेसरने सिद्ध कर दिया है कि उनकी नाक चपटी होती है, इस लिए वे निकृष्ट जातिके हैं और उत्तरकूटवाले उच्च जातिके हैं क्योंकि उनकी नाक नुकीली है। उत्तरकूटके नागरिकका उद्देश्य ही दूसरे राष्ट्रोंपर विजय प्राप्त करना है।" यह शिक्षा उन्हें विद्यार्थी अवस्थामें ही दी जाती है। साथ ही विद्यार्थियोंको बतलाया जाता है कि रण-

जित्के परदादाने २९३ सिपाही लेकर दक्षिणी जातिके ३१,७५० सिपाही भगा दिये थे। यह बात पलासीकी लड़ाईके विषयमें अँगरेज इतिहासलेखकों पर भी घटती है जिनके अनुसार लार्ड क्लाइवने बहुत थोड़ी सी अँगरेजी सेनासे नवाबकी बड़ी भारी सेनाको भगा दिया था। ऐसी ही बातें विद्यार्थियोंके अन्दर डाल कर दूसरे राष्ट्रके प्रति घृणा पैदा की जाती है।

मन्त्री।

मन्त्रीका चरित भी अत्यन्त रोचक है। उसे पढ़ते समय भूतपूर्व भारतमन्त्री मि० माण्टेग्यूका स्मरण हुए बिना नहीं रहता। वह साधारणतया कूटनीतिका प्रयोग करता हुआ अपने राष्ट्रकी उन्नतिमें लगा हुआ है। वह विभूतिके बाँधकी अपेक्षा शिवतराईके लोगोंको वशमें करनेके लिए युवराजका वहाँ भेजना और उसके द्वारा प्रेमका बाँध डलवाना अधिक आवश्यक समझता है और उसकी समझमें यह प्रेमका बाँध विभूतिके बाँधसे कहीं बढ़कर उत्पातकारिणी शक्तिको रोकनेमें समर्थ होता। वह समझता है कि युवराजके शिवतराईमें रहनेसे वहाँकी प्रजासे जो प्रेमसम्बन्ध बढ़ता वह 'कर' की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् होता। प्रत्येक नई परिस्थितिमें वह अपनी सम्मति बदल लेता है। वह दमननीतिके भी अधिक पक्षमें नहीं है। राजा जब धनंजयको पकड़नेकी आज्ञा देता है तो मन्त्री वैसा करनेसे हिचकता है। वह राजाको समझाता है कि "कुछ लोग ऐसे भयानक होते हैं जिन्हें पकड़नेकी अपेक्षा स्वतन्त्र रहने देना ही अच्छा होता है"। मन्त्रीकी यह सलाह मि० माण्टेग्यूकी महात्मा गाँधीके पकड़नेके विषयकी नीतिसे कितनी मिलती जुलती हुई है! मन्त्री युवराजके महत्त्वको खूब अनुभव करता है। वह संजयको युवराजके साथ रहनेकी अपेक्षा उसके उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायक होनेकी अनुमति देता है।

उत्तरकूट और शिवतराईके नागरिक।

इस नाटकमें दोनों स्थानोंके नागरिक कई बार प्रकट होते हैं। उनमें कई समानतायें और कई असामानतायें हैं। दोनों ही नागरिक परस्पर घृणाका भाव रखते हैं और एक दूसरेको निकृष्ट समझते हैं। शिवतराईके लोग उत्तरकूटके लोगोंको 'मांसके लोथड़े' के समान कहकर उनकी आकृतियोंकी हँसी करते हैं। वे अपने पूर्व-पुरुषको देवताओंके प्यालेसे छलके हुए अमृतसे बना मानते हैं तथा उत्तरकूटके आदिपुरुषको राक्षसोंके खाली प्यालोंके टुकड़ोंसे बना बताते हैं। वे उत्तरकूटके रहनेवालोंके वेषको

भद्दा समझते हैं, क्योंकि वे कपड़ोंमें ऐसे जकड़े रहते हैं कि कहींसे चू न पड़ें और उन्हें केवल परिश्रमके लिए बनाया गया है। वे समझते हैं कि "उत्तरकूटके लोगोंके अक्षर दीमकके कीड़ों जैसे होते हैं। उनकी विद्या जहाँ लगी कि खाकर बरबाद कर दिया और वहाँ मिट्टीका ढेर खड़ा कर दिया। वे अपने हथियारोंसे दूसरोंके प्राण और शास्त्रोंसे मन नष्ट कर देते हैं।" ठीक ऐसी ही बातें अँगरेजों, उनकी भाषा और सभ्यताके विषयमें बहुधा भारतवासी सोचते हैं। दूसरी ओर उत्तरकूटके नागरिक उनके कनटोपों और चपटी नाककी हँसी उड़ाते हैं। उत्तरकूटके लोग शिवतराईके पानी पर बाँध लग जानेसे प्रसन्न होते हैं और वे विभूतिकी महिमा गाते हैं। शिवतराईके लोग धनंजयके अनन्यभक्त तथा अनुगामी हैं और वे उत्तरकूटके राजासे लड़कर अपने अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। उत्तरकूटके लोगोंमें अपने राष्ट्रके महत्त्वको स्थापित करनेके भाव भरे हुए हैं। वे राष्ट्रके काममें, व्यक्तिको चाहे जैसा बुरा काम करना पड़े, उसका उत्तरदायित्व उस व्यक्तिपर नहीं समझते। उत्तरकूटके लोग राष्ट्रकी सेवा करते हुए अपने अधिकारको भी अनुभव करते हैं और युवराजसे शिवतराईके लोगोंकी सहायताके कारण क्रुद्ध होकर उसे दण्ड दिलानेके लिए राजाके विरुद्ध भी बगावत करनेको तैयार हो जाते हैं।

नाटकके अन्य पात्र।

नाटकमें अन्य भी बहुतसे पात्र हैं। भूमिका बहुत बढ़ चुकी है। उनका अलग अलग वर्णन करना आवश्यक भी नहीं। संजय राजकुमार युवराजमें वही भक्ति और अनुचर होनेका वही भाव रखता है जो लक्ष्मणजी श्रीरामके लिए रखते थे। गणेश शिवतराईके लोगोंकी आवाजको प्रकट करनेवाला नेता है। वह अपना कोई नया आदर्श नहीं रखता, प्रत्युत लोकमतको प्रकट करता है। विश्वजित् रणजित्का चाचा है जो किसी समय राष्ट्रीयवादको मानता हुआ कमजोर राष्ट्रोंपर अत्याचार करता था, परन्तु पीछे उसपर युवराजका प्रकाश पड़ा और तब वह सर्वतोभावेन युवराजका सहायक बन गया। युवराजको बन्दीगृहसे छुड़ानेके लिए वह एक षड्यन्त्र रचता है। इनके अतिरिक्त अम्बा, फूल बेचनेवाली, बद्ध, उद्धव आदि और भी अनेक पात्र हैं।

कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक,
१९७९ वि०। } धर्मेन्द्रनाथ।

नाटकके पात्र ।

रणजित्	उत्तरकूटका राजा
मंत्री	उत्तरकूटका मंत्री
विभूति	राजकीय इञ्जीनियर
अभिजित्	उत्तरकूटका युवराज
संजय	उत्तरकूटका राजकुमार
धनंजय	शिवतराईका वैरागी
गणेश	शिवतराईका नेता
विश्वजित्	रणजित्का चाचा
अम्बा	सुमनकी माता
निमकू, बनवारी, हुब्बा	नन्दीघाटीको बन्द करनेके लिए पकड़े गये रंगरूट ।
कंकर, नरसिंह	रंगरूट भरती करनेवाले ।

फूल बेचनेवाली, भैरव-मन्दिरके पुजारी, शिवतराईके नागरिक, उत्तरकूटके नागरिक, आदि ।

मुक्तधारा।

[दृश्य—उत्तरकूटके पार्वत्य प्रदेशका एक मार्ग, जो भैरवके मन्दिरकी ओर जाता है। सारे नाटकमें दृश्य या घटनास्थल यही रहता है। दूर आकाशमें विशाल लोहेके यन्त्रका मस्तक दिखाई देता है। उसके दूसरी ओर भैरव-मन्दिरके शिखरका त्रिशूल है। मार्गके पार्श्वभागमें स्थित आम्र-कुञ्जमें उत्तरकूटाधिपति राजा रणजित्‌का शिविर है। आज अमावास्याके सायङ्कालमें भैरव-मन्दिरमें आरती होने वाली है। राजा वहाँ पैदल जायँगे, मार्गमें वे अपने शिविरमें विश्राम कर रहे हैं। राजाकी सभाका यन्त्रराज (इञ्जीनियर) विभूति पच्चीस वर्ष लगातार यत्न करनेके पश्चात् आज 'मुक्तधारा' नामक झरनेका लोहयन्त्र निर्मित बाँध पूरा करनेमें समर्थ हुआ है। उत्तरकूटके निवासी अपने उपहारों सहित मन्दिरकी ओर जाते हुए और मन्दिरके आँगनमें राजकीय यन्त्रराज (इञ्जिनीयर) विभूतिकी सफलताके उपलक्ष्यमें उत्सव मनानेकी तयारी करते हुए दीखते हैं। भैरव-मन्दिरके पुजारी सबसे आगे हैं। वे मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए दीखते हैं। भैरव-की स्तुति-गान करते हुए उनमेंसे कुछ धूप जलाते हैं, कुछ घण्टा घड़ियाल और कुछ शंख बजाते हैं। उनके गानमें प्रत्येक ताल पर घण्टानाद होता है।]

[पुजारी मिल कर गाते हैं:—]

गान ।

जय भैरव, जय शङ्कर,
जय जय जय प्रलयङ्कर,
शङ्कर शङ्कर !

जय संशयभेदन,
जय बन्धन-छेदन,
जय संकट-संहर
शङ्कर शङ्कर !

(पुजारियोंका गाते हुए प्रस्थान ।)

[पूजाके लिए नैवेद्य लिये हुए एक विदेशी पथिकका प्रवेश और उसका उत्तरकूटके नागरिकसे मिलना ।]

पथिक—आकाशमें वह क्या है ? उसे देखनेसे तो भय लगता है !

नागरिक—जानते नहीं ? मालूम पड़ता है तुम विदेशी हो । यह यन्त्र है ।

पथिक—यन्त्र ? कैसा यन्त्र ?

नागरिक—हमारे राजकीय यन्त्रराज (इंजीनियर) विभूतिने इसके लिए जो २५ वर्षतक परिश्रम किया था वह आज पूरा हुआ है और उसीका यह उत्सव मनाया जा रहा है ।

पथिक—इस यन्त्रका कार्य क्या है ?

नागरिक—इसने मुक्तधाराके झरनेको रोक दिया है ।

पथिक—बाप रे बाप ! यह तो एक राक्षसकी मांसरहित जबड़ों-वाली खोपड़ीके समान दीखता है । यह तुम्हारे उत्तरकूटके सिराने टकटकी लगाये खड़ा है । इसे रातदिन देखते देखते तुम्हारे तो प्राण भी सूखकर लकड़ी हो जायँगे !

नागरिक—नहीं, हमारे प्राण बहुत दृढतासे सुरक्षित हैं, इसके लिए आप चिन्ता न करें।

पथिक—तथापि इस यन्त्रको सूर्यतारोंके सामने इस प्रकार खुला न रखना चाहिए। यदि यह ढँक दिया जा सकता तो अच्छा होता। देखो न, यह आकाशमण्डलमें अड़ा हुआ मानों उसे चिढ़ा रहा है।

नागरिक—तो क्या आज तुम भैरवकी आरती देखने न जाओगे ?

पथिक—घरसे तो देखनेके लिए ही निकला था। प्रतिवर्ष मैं इसी अवसर पर अपनी भेंट चढ़ाता हूँ; परन्तु इससे पूर्व मैंने मन्दिरके ऊपरके आकाशमें ऐसी विकट बाधा कभी नहीं देखी। एकाएक इसकी ओर देखकर आज मेरा शरीर काँप उठा है। इसका इस तरह मन्दिरके मस्तकसे भी ऊँचा होजाना मन्दिरसे स्पर्धा करने जैसा जान पड़ता है। भेंट तो चढ़ाये ही आता हूँ परन्तु मन प्रसन्न नहीं होता है। (प्रस्थान।)

[अम्बा नाम्नी एक स्त्रीका प्रवेश। एक सफेद चादर उसके सिर और शरीरको ढके है और उसका पल्ला धूलमें घिसटता जाता है।]

अम्बा—सुमन ! मेरा सुमन ! क्या मेरा पुत्र सुमन मेरे घर नहीं लौटेगा ? (नागरिकके प्रति) तुम सब तो लौट आये पर वह कहाँ है ?

नागरिक—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं जनाई गाँवकी रहनेवाली अम्बा हूँ। मेरा सुमन, वह मेरी आँखोंकी ज्योति है, मेरे प्राणोंका निश्वास है, हा मेरा सुमन !

नागरिक—उसका क्या हुआ ?

अम्बा—मुझे पता नहीं कि वे उसे कहाँ ले गये। मैं भैरवमन्दिरमें पूजा करने गई थी और जब लौटी तो देखा कि उसको वे ले गये हैं।

नागरिक—तो निश्चयसे उन्होंने उसे 'बाँध' के कामके लिए पकड़ लिया होगा।

अम्बा—मैंने सुना है कि वे उसे इसी मार्गसे ले गये हैं। उस गौरी पर्वतके पश्चिमकी ओर—वहाँतक मेरी दृष्टि नहीं पहुँच सकती। मैं उसके आगेका मार्ग नहीं देख सकती।

नागरिक—अब रोने और चिन्ता करनेसे क्या होगा? हम लोग भैरव-मन्दिरकी आरती देखने जा रहे हैं। हमारे लिए आज उत्सवका दिन है। तुम भी चलो।

अम्बा—ना, ना, उस दिन भी तो मैं भैरवकी आरतीमें गई थी। तबसे पूजाके लिए जानेमें डर लगता है। देखो, मैं तुमसे कहती हूँ कि हमारी पूजा उस प्रभु तक नहीं पहुँचती। उसे कोई बीचमें ही छीन लेता है।

नागरिक—कौन छीन लेता है?

अम्बा—वही जिसने मेरा सुमन मुझसे छीन लिया। मैं अबतक नहीं जानती कि वह कौन है। सुमन! मेरा सुमन! मेरा प्यारा सुमन!

(दोनों जाते हैं।)

[मन्दिरकी ओर जाते हुए मार्गमें विभूतिको उत्तर-
कूटके युवराज अभिजित्का भेजा
हुआ दूत मिलता है।]

दूत—विभूति, युवराजने मुझे आपके पास भेजा है।

विभूति—उनकी क्या आज्ञा है?

दूत—आप बहुत दिनसे मुक्तधाराके झरनेका बाँध बनानेमें लग रहे हैं। वह बाँध बार बार टूटा, न जाने कितने मनुष्य उसकी

धूल और रेतमें दबकर मर गये और न जाने कितने उसके पूरमें बह गये । अन्तमें आज—

विभूति—मेरा बाँध तैयार हो गया । उनके प्राणोंका बलिदान व्यर्थ नहीं गया ।

दूत—शिवतराईके निवासियोंको अभीतक यह बात ज्ञात नहीं हुई है । वे इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य उनसे वह पानी छीन सकता है जो कि उनके लिए ईश्वरका दान है ।

विभूति—ईश्वरने उन्हें केवल पानी दिया है, परन्तु मुझे उस पानीको बाँधनेकी शक्ति भी दी है ।

दूत—वे बेचारे नहीं जानते कि एक सप्ताहके भीतर उनके खेत—

विभूति—उनके खेतोंकी बात मुझसे क्यों कहते हो ? मुझे उनके खेतोंसे क्या ?

दूत—क्या आपका यही उद्देश्य न था कि जलको रोककर उनके खेतोंको सुखा दिया जाय ?

विभूति—मेरा उद्देश्य रेती, जल और पत्थरों पर—जो कि मानों मनुष्यकी शक्तिके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे—मनुष्यको विजय प्राप्त कराना था । मुझे यह सोचनेका अवकाश न था कि किसी अभागे किसानके किसी मकाके खेत पर इसका क्या असर पड़ेगा ।

दूत—राजकुमारने पूछा है कि क्या अब तक भी आपको इस विषय-पर विचार करनेका अवसर नहीं मिला ?

विभूति—नहीं, मेरा मन इस यन्त्रकी महिमाके विचारमें डूबा हुआ है ।

दूत—क्या आपके उस विचारम भूखोंकी आह बाधा नहीं डालती ?

विभूति—न तो पानीका वेग मेरे बाँधको तोड़ सकता है और न भूखोंकी पुकार मेरी मशीनको हिला सकती है।

दूत—क्या आपको शापका भी भय नहीं है?

विभूति—शाप! देखो, जिस समय उत्तरकूटमें मजदूरोंका अभाव हो गया, उस समय मैंने राजाकी आज्ञासे चण्डपत्तन ग्रामके १८ वर्षसे ऊपर अवस्था वाले सब युवकोंको पकड़ बुलाया और उनमेंसे अधिकांश फिर नहीं लौटे। उस समयकी न जाने कितनी माताओंके शाप पर मेरे यन्त्रने विजय पाई है। जो ईश्वरकी शक्तिसे लड़ सकता है वह मनुष्यके अभिशापसे नहीं डरता।

दूत—राजकुमार कहते हैं कि आपने एक वस्तुके निर्माणका गौरव तो प्राप्त कर ही लिया है, अब उसका विनाश करके और भी अधिक गौरव प्राप्त कीजिए।

विभूति—जब तक मेरा कार्य समाप्त न हुआ था, वह मेरा था; पर अब उस पर सारे उत्तरकूटका अधिकार है। मैं अब उसे नष्ट नहीं कर सकता।

दूत—युवराज कहते हैं कि तो फिर इस नष्ट करनेके अधिकारको वे स्वयं अपने हाथमें ले लेंगे।

विभूति—क्या ये शब्द स्वयं युवराजके हैं? क्या वे हमसे दूसरे हैं? हममेंसे ही नहीं हैं? पराये हैं? शिवतराईके हैं?

दूत—राजकुमार कहते हैं कि उत्तरकूटमें केवल यन्त्रका ही नहीं, प्रभुका भी राज्य है और यह अभी सिद्ध करना बाकी है कि उस प्रभुकी

इच्छा उत्तरकूटकी सरकारके साथ है या नहीं। इस यन्त्रको उस इच्छाके बीचमें न खड़ा करना चाहिए।

विभूति—यन्त्रकी शक्तिके द्वारा यह सिद्ध करना ही मेरा उद्देश्य है कि ईश्वरका सिंहासन हमारा ही है। राजकुमारसे कहना कि मेरे इस यन्त्रकी मूठको जरा भी हिला सके ऐसा कोई भी मार्ग नहीं रहा है।

दूत—ईश्वरको जब नष्ट करना अभीष्ट होता है तब किसी बड़े मार्गकी जरूरत नहीं पड़ती, छोटे छोटे छिद्र ही, जो हम दाखते भी नहीं, नाशके लिए पर्याप्त होते हैं।

विभूति—(चौंककर) छिद्र! उनके विषयमें तुम क्या जानते हो?

दूत—मैं क्या जानता हूँ! अरे भाई, जिन्हें जाननेकी जरूरत है वे स्वयं जान लेंगे। (जाता है।)

[उत्तरकूटके नागरिक मन्दिरकी ओर जाते
हुए विभूतिसे मिलते हैं।]

प्रथम नागरिक—इंजीनियर साहेब, आप तो अद्भुत मनुष्य हैं! हमें पता भी न चला कि आप हमसे पहले कब चले आये।

द्वितीय—यह तो इसका सदाका स्वभाव है। कोई नहीं जानता कि यह चुपचाप आगे बढ़ता हुआ किस तरह सबको पीछे छोड़ जाता है। चौबुआ गाँवमें रहनेवाले इस मुंडे विभूतिके उस ग्रामीण मदरसेमें हमारे साथ कान खिंचा करते थे! परन्तु फिर भी यह हम सबसे बढ़ कर ऐसा आश्चर्यजनक कार्य कर बैठा है।

तृतीय नागरिक—अरे गबरू! हाथमें डलिया लिये इस तरह मुँह फाड़े हुए क्यों खड़ा है? क्या विभूतिको तूने पहली ही बार देखा है? ला, हार निकाल, हम इसे पहिना देवें।

विभूति—नहीं, नहीं, इसकी क्या आवश्यकता है?

तृतीय नागरिक— नहींकी क्या बात है? यदि तुम्हारी गर्दन तुम्हारी महिमाके ही साथ साथ बढ़कर ऊँटके बराबर हो जाती, और उसे हम सब लोग जी भरकर मालाओंसे लाद देते, तो बहुत अच्छी मालूम होती।

द्वितीय नागरिक—हमारा ढुलकिया हरीश तो अभी तक नहीं आया।

प्रथम नागरिक—वह तो आलसियोंका राजा ठहरा, उसकी पीठ-का ढोल अच्छी तरह बजाया जाता तो—

तृतीय नागरिक—ढोल बजानेके लिए उसके हाथ हमसे कहीं अधिक मजबूत हैं।

चतुर्थ नागरिक—मेरे मनमें एक बिचार उठा है कि हम विभूति-को मन्दिर ले चलनेके लिए सामन्तसे रथ माँग लें। परन्तु सुनते हैं कि आज तो स्वयं महाराज भी मन्दिरको पैदल ही जायँगे।

पाँचवाँ नागरिक—यह अच्छा ही हुआ। सामन्तका रथ क्या है, बिल्कुल दश-रथ है। रास्तेमें बातकी बातमें एकका दश हो जाता है।

तृतीय ना०—हा हा हा हा! दश-रथ! हमारा यह लम्बू कैसे मजेकी बात कहता है!—दश-रथ!

पाँचवाँ ना०—क्या झूठ कहता हूँ! मैं अपने लड़केके ब्याहमें जब उसे ले गया था, तब जितना उसपर चढ़ा नहीं था उससे कहीं ज्यादा उसे मैंने स्वयं खाचकर चलाया था!

चौथा ना०—अच्छा तो एक काम करो। विभूतिको कंधेपर रख कर ले चलें

विभूति—नहीं, नहीं, अरे यह क्या करते हो?

पाँचवाँ नागरिक—नहीं, नहीं, ऐसा तो होना ही चाहिए। तुमने उत्तरकूटकी कोखमें जन्म लिया है, पर आज तुम उसकी गर्दनपर चढ़ रहे हो। तुम्हारा मस्तक सबसे उपर निकल गया है।

[कंधोंपर लकड़ियाँ रखकर उस पर विभूतिको
बिठा लेते हैं और सबके सब कहते हैं—
'जय यन्त्रराज विभूतिकी जय']

गान।

नमो यन्त्र, नमो यन्त्र, नमो यन्त्र, नमो यन्त्र!
तुम चक्रमुखरमन्द्रित,
तुम वज्र-बह्नि-वंदित,
तव वस्तुविश्ववक्षदंश
ध्वंस-विकटदन्त!
तव दीप्ति-अग्नि-शत-शतघ्नि
विघ्न-विजय-पन्थ।
तव लोहगलन शैलदलन
अचल-चलन मन्त्र।
कभी काष्ठलोष्टइष्टक दृढ़,
घनपिनद्ध काया,
कभी भूतल-जल-अंतरीक्ष-
लंघन लघुमाया,
तव खनि-खनित्र-नख-विदीर्ण
क्षिति-विकीर्ण-अंत्र,
तव पञ्चभूत-बन्धनकर
इन्द्रजाल तन्त्र।

(सब जाते हैं।)

[महाराज रणजित् अपने मन्त्री सहित
शिबिरसे आते हैं।]

रणजित्—तुम हमारी शिवतराईकी प्रजाको पूर्णतया दबानेमें सदैव असमर्थ रहे। इतने दिनोंके बाद अब विभूतिने मुक्तधाराके झरनेको नियन्त्रित कर यह सब सम्भव कर दिखाया। परन्तु यह क्या बात है कि तुम इसके लिए हर्ष प्रकट नहीं करते? क्या यह डाह है?

मन्त्री—महाराज क्षमा कीजिए, यह हमारा काम नहीं कि हम फावड़े और कुदालकी सहायतासे मिट्टी और पत्थरसे युद्ध करें। हमारा हथियार कूटनीति है। हमारा काम मनुष्यके मस्तिष्कसे है। मैंने ही युवराजको शिवतराईमें वाइसराय बना कर भेजनेकी सम्मति दी थी और वह बाँध जो इस नीतिके द्वारा तैयार होता, इस वर्तमान बाँधकी अपेक्षा अधिक सुरक्षित रीति पर और अधिक स्थिरतासे बड़ी बड़ी उत्पातकारिणी शक्तियोंको रोकनेमें समर्थ होता।

रणजित्—तथापि उसका परिणाम क्या हुआ? उन्होंने दो वर्षसे कर ही नहीं दिया है। अकाल पड़ना कोई नई बात नहीं है, पर पहले तो वे कर दिये बिना न रहते थे।

मन्त्री—ठीक उस समय जब कि एक करकी अपेक्षा भी अधिक मूल्यवान् वस्तु वसूल की जा रही थी, श्रीमान्‌ने राजकुमारको वापिस बुला लिया। राजकार्यमें छोटोंकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। याद रखिए, जब अत्याचार असह्य हो जाता है तब छोटे भी कष्ट सहनकी शक्तिके द्वारा बड़ोंसे आगे बढ़कर सबल हो जाते हैं।

रणजित्—तुम्हारी सम्मति क्षण क्षणमें बदलती रहती है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि तुमने बहुधा कहा है कि जो अपनेसे नीचे हैं उन्हें अपने उच्चाधिकारसे सदैव दबाये रखना चाहिए और विदेशी प्रजाओंपर यह दबाव रहना ही राजनीति है। कहा था न?

मन्त्री—हाँ मैंने यह कहा था; परन्तु उस समयकी परिस्थिति और थी। उस समय मेरी मन्त्रणा समयानुकूल थी; परन्तु अब—

रणजित्—राजकुमारको शिवतराई भेजना मेरी इच्छाके प्रतिकूल था।

मन्त्री—क्यों महाराज?

रणजित्—प्रभाव दूरसे ही अच्छा पड़ता है। परिचयसे अवज्ञा बढ़ती है। अपनी प्रजाके हृदयों पर प्रेमसे अधिकार किया जा सकता है; पर दूसरोंको भयसे ही वशमें लाया जा सकता है।

मन्त्री—महाराज, आप भूल गये कि राजकुमारको शिवतराई भेजनेका क्या कारण था। कुछ समय तक हमने उनके अन्दर एक गहरी अशान्तिका भाव देखा और हमें यह सन्देह हुआ कि राजकुमारको कहींसे पता चल गया है कि वे राजवंशमें पैदा नहीं हुए हैं प्रत्युत उस झरनेके स्रोतके समीप पड़े पाये गये हैं, तब उनका मन दूसरी ओर लगानेके लिए—

रणजित्—हाँ, मैं जानता हूँ। वह झरनेके स्रोतके पास रात्रिमें अकेला जाकर लेटा करता था। एक दिन अकस्मात् मैं जा पहुँचा और पूछा—"यहाँ क्यों आये हो?" उसने उत्तर दिया कि "इस झरनेकी ध्वनिमें मुझे अपनी माताकी वाणी सुनाई देती है।"

मन्त्री—एक बार मैंने राजकुमारसे पूछा कि "तुम्हें क्या हो गया है, तुम बहुधा राजमहलसे बाहर क्यों चले जाते हो।" उन्होंने उत्तर दिया कि "मैं संसारमें मार्गोंको खोलने आया हूँ। यही मेरे जीवनका आन्तरिक उद्देश्य है, जिसे मुझे अवश्य पूरा करना चाहिए।"

रणजित्—यह भविष्यवाणी कि “वह एक विशाल साम्राज्यका शासक होगा” अब ठीक नहीं माळूम होती।

मन्त्री—परन्तु महाराज, वे आपके गुरूके भी गुरु अभिराम स्वामी थे जो विशेष कर इसी संवादको सुनानेके लिए यहाँ आये थे। यह उन्हींकी भविष्यवाणी है।

रणजित्—उन्होंने अवश्य भूल की है। राजकुमारने अपनी सब अवस्थाओंमें मुझे हानि पहुँचाई है। उसने अपनी अन्तिम मूर्खता-के आवेशमें नन्दी घाटीके उस प्राकारको तोड़ डाला, जिसको हमारे पूर्व पुरुषाओंने वर्षोंमें पूरा किया था। और अब शिवतराईकी ऊन और दूसरी पैदावारको हमारे राज्यके बाहरके बाजारोंमें जानेकी कोई रोक न रही। इससे उत्तरकूटमें खाद्यसामग्री और वस्त्रोंका मूल्य बढ़ जायगा।

मन्त्री—आपको स्मरण रखना चाहिए कि वे अभी कम उम्र हैं और अपने कर्त्तव्यके एक पहलूको ही देखते हैं। उनकी दृष्टिमें हर समय शिवतराईका ही हित रहता है।

रणजित्—बस, इसीको तो मैं उसका स्वयं अपने राष्ट्रके विरुद्ध विद्रोह समझता हूँ। मुझे निश्चय है कि शिवतराईके उस वैरागी धनञ्जयका—जो हमारी प्रजाको हमारे विरुद्ध भड़काता है—इस कार्यमें अवश्य हाथ होगा। हमें उसीकी मालासे उसका गला घोट देना चाहिए। उसे (धनञ्जयको) बन्दी करना अब आवश्यक हो गया है।

मन्त्री—मैं विरोध करनेका साहस नहीं कर सकता; परन्तु मुझे निश्चय है कि कुछ पुरुष ऐसे भयानक होते हैं जिन्हें पकड़नेकी अपेक्षा स्वतन्त्र रहने देना ही अच्छा होता है।

रणजित्—इस विषयमें तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं।

मन्त्री—नहीं महाराज, मैं चाहता हूँ कि श्रीमान् ही इस विषय-में चिन्ता करें।

[द्वारपालका प्रवेश।]

द्वारपाल—महाराज, मोहनगढ़से आपके चाचा विश्वजित् महाराज पधारे हैं।

रणजित्—लो, उन्हींमेंसे एक और भी आ गया। यह युवराज-के बिगाड़नेवालोंमें सबसे बढ़कर है। एक मनुष्य जो आत्मीय होकर भी परकीय बना हुआ है, कुबड़े मनुष्यके उस कूबड़के समान है, जो सदा ही संग लगा रहता है और किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता, परन्तु फिर भी उससे कष्ट ही होता है। अरे! यह क्या हो रहा है?

मन्त्री—भैरवपन्थी लोगोंका दल बाहर आ गया है और मन्दिर-की परिक्रमा कर रहा है।

[भैरवपन्थी आते हैं और गीतका शेष भाग गाते हैं:—]

तिमिर-हृद्विदारण
ज्वलदग्नि-निदारुण,
मरुश्मशान-सञ्चर,
शङ्कर शङ्कर।
वज्रघोष-वाणी,
रुद्र, शूलपाणी,
मृत्युसिन्धु-संतर
शङ्कर शङ्कर!

(प्रस्थान।)

[रणजित्के चाचा विश्वजित्का प्रवेश । उनके
बाल सफेद हैं, वस्त्र सफेद हैं और
पगड़ी भी सफेद है ।]

रणजित्—चाचाजी, प्रणाम । मुझे ऐसे सौभाग्यकी कदापि आशा न थी कि आप आयँगे और हमारी पूजामें सम्मिलित होंगे ।

विश्वजित्—मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ कि भगवान् भैरव तुम्हारी इस पूजाको स्वीकार न करेंगे ।

रणजित्—आपके ये शब्द हमारे महोत्सवके लिए अपमान-जनक हैं ।

विश्वजित्—उत्सव ? किस लिए ? क्या उस जलप्रवाहको रोकनेके उपलक्ष्यमें जिसे प्रभुओंके प्रभु स्वयं भगवान् तृषार्तोंकी प्यास बुझानेके लिए अपने कमण्डलुमेंसे ढोल रहे हैं ? उस मुक्त जलको तुमने क्यों रोक दिया है ?

रणजित्—अपने शत्रुओंको पराजित करनेके लिए ।

विश्वजित्—क्या तुम्हें स्वयं भगवान्को अपना शत्रु बनाते हुए डर नहीं लगता ?

रणजित्—हमारी यह विजय उन्हींकी विजय है जो उत्तरकूटके रक्षक देवता हैं । इसलिए उन्होंने स्वतः अपने दिये हुए उपहार-को हमारे लाभके लिए वापिस लेना स्वीकार किया है । वे प्रभु तृषाके त्रिशूलसे शिवतराईका हृदय छेदकर उसे उत्तरकूटके सिंहासनके तले ला पटकेंगे ।

विश्वजित्—यदि यह ठीक है तो तुम्हारी पूजा पूजा नहीं किन्तु उस प्रभुको मेहनताना देनेके समान है ।

रणजित्—चाचा, आप परकीयों (शत्रुओं) के पक्षपाती हैं और स्वतः अपने आत्मीयोंके विरोधी हैं। यह आपकी ही शिक्षाका फल है कि अभिजित् उत्तरकूट राज्यके प्रति अपने उन कर्तव्योंको पूरा करनेमें—जो भविष्यमें उसे करने होंगे—अब तक असमर्थ रहा है।

विश्वजित्—मेरी शिक्षाके द्वारा? क्या एक समय मैं तुम्हारे ही दलमें न था? जब तुम्हारे कार्योंसे पत्तनमें उपद्रव खड़ा हुआ तब क्या प्रजाका सर्वनाश करके मैंने ही उसे नहीं दबाया था? उसके बाद मेरे हृदयमें बालक अभिजित्ने स्थान ग्रहण किया। वह एक प्रकाशकी लपटके रूपमें प्रकट हुआ। तब उन्हीं मनुष्योंको--जिन्हें मैंने अन्धकारके कारण न देख सकनेसे चोट पहुँचाई थी—अपने आत्मीयोंके समान देखा। चक्रवर्ती सम्राट्के चिह्न देख कर जिसे तुमने अपना राजकुमार बनाया, उसे अब तुम उत्तरकूटके सिंहासनकी सीमाओंके भीतर ही कैद कर रखना चाहते हो?

रणजित्—जान पड़ता है कि आपहीने उस पर गुप्त रहस्य प्रकट किया और आपने ही उसे बतलाया कि वह मुक्तधारा झरनेके पास पड़ा पाया गया था।

विश्वजित्—हाँ, मैंने ही यह भेद खोला। उस दिन मेरे महलमें उसका दीवालीका निमंत्रण था। गोधूलिके समय मैंने देखा कि वह झरोखेमें अकेला खड़ा हुआ गौरीकी चोटीकी ओर ताक रहा है। मैंने पूछा—"क्या देख रहे हो?" उसने कहा—"मैं भविष्यके मार्गोंको—जो पर्वतके दुर्गम रास्तोंमें अभी तक नहीं बने हैं—देख रहा था। वे मार्ग दूरको समीप कर देंगे।" जब मैंने उसकी बात सुनी तो अपने मनमें सोच लिया कि कोई शक्ति इस बालक-

को बन्दी नहीं बना सकेगी जिसे एक वनवासिनी माताने—उस मुक्तधाराके झरनेके पास जिसका कि स्रोत अदृश्यमें है—जन्म दिया है। मुझसे रहा नहीं गया, बोल उठा " वत्स, जब तुम्हारा जन्म उस मार्गके पास हुआ था तब उस नम्र पर्वतने अपनी गोदमें लेकर तुम्हारी अभ्यर्थना की थी। तुमने जन्मके समयका घरका 'स्वागत संगीत' नहीं सुना था।"

रणजित्—ठीक, अब मैं सब कुछ समझ गया।

विश्वजित्—क्या समझे ?

रणजित्—अभिजित्‌ने जबसे तुम्हारे द्वारा यह संवाद सुना है तभीसे उसका प्रेम हमारे राजवंशसे हट गया है। इस वैमनस्यको प्रकट करनेके लिए ही उसने पहला काम यह किया कि नन्दी घाटीके प्राकारको तोड़कर नन्दी घाटीका मार्ग खोल दिया।

विश्वजित्—तो इसमें हानि ही क्या हुई ? वह खुला मार्ग उत्तर-कूट और शिवतराई दोनोंके लिए एक सा है।

रणजित्—चाचा, आप मेरे घरके हैं, गुरुजन हैं, इसी लिए मैं अबतक धैर्य धारण कर रहा हूँ। परन्तु अब नहीं सह सकता। आप मेरे राज्यको छोड़ कर चले जाइए।

विश्वजित्—मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता, पर यदि तुम मुझे छोड़ते हो तो मैं सहन करूँगा। (प्रस्थान।)

[अम्बाका प्रवेश।]

अम्बा—(राजासे) अजी तुम कौन हो ? सूर्य अस्त होनेवाला है, परन्तु मेरा सुमन तो अबतक नहीं लौटा।

रणजित्—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं कोई नहीं। वह जो मेरा सर्वस्व था, इसी मार्गमें मुझसे छीन लिया गया। क्या इस मार्गका कहीं अन्त नहीं है? क्या मेरा सुमन गौरीपर्वतके शिखरके उस पार लगातार पश्चिमकी ओर ही चलता जायगा, जहाँ सूर्य डूब रहा है, प्रकाश डूब रहा है और प्रत्येक वस्तु डूब रही है?

रणजित्—(मन्त्रीसे) ऐसा प्रतीत होता है कि—

मन्त्री—हाँ महाराज, यह बात उस बाँधके बनानेसे ही सम्बन्ध रखती है।

रणजित्— (अम्बासे) तुम खेद मत करो। मैं जानता हूँ कि पृथिवीमें जो सबकी अपेक्षा चरम दान है, उसे आज तुम्हारे पुत्रने पा लिया है।

अम्बा—यदि ऐसा होता तो वह उस दानको सायङ्कालके समय मेरे पास अवश्य लाता। क्योंकि मैं उसकी माता हूँ।

रणजित्—वह लायेगा। अभी तो वह सायंकाल आया ही नहीं है।

अम्बा—ईश्वर करे कि तुम्हारा वचन सत्य हो। मैं मन्दिरको जानेवाले इस मार्ग पर उसकी प्रतीक्षा करूँगी। बेटा सुमन!

(जाती है।)

[पास ही एक झाड़की छायामें कुछ विद्यार्थियोंके साथ उत्तरकूटके एक अध्यापकका प्रवेश।]

अध्यापक—अरे! अब मैं समझा कि इन दुष्ट लड़कोंको अच्छी तरह बेतोंसे ठीक करना चाहिए। लड़को, खूब जोरसे बोलो—'जय राजराजेश्वरकी।'

विद्यार्थीगण—जय राजरा—

अध्यापक—(पास खड़े हुए एक दो लड़कोंको चपतें मारकर)—जेश्वर !

विद्यार्थीगण—जेश्वर !

अध्यापक—श्री श्री श्री श्री श्री,—

विद्यार्थीगण—श्री श्री श्री—

अध्यापक— (धक्का मारकर) पाँच बार ।

विद्यार्थीगण—पाँच बार ।

अध्यापक—अरे अभागे बन्दरो, बोलो श्री श्री श्री श्री श्री

विद्यार्थीगण—श्री श्री श्री श्री श्री

अध्यापक—उत्तरकूटाधिपतिकी जय—

विद्यार्थीगण—उत्तरकूटा—

अध्यापक—धिपतिकी—

विद्यार्थीगण—धिपतिकी—

अध्यापक—जय ।

विद्यार्थीगण—जय ।

रणजित्—तुम कहाँ जाते हो ?

अध्यापक—आज महाराज राजकीय इंजीनियरको विशेष सम्मान वितरण करेंगे । मैं उसी हर्षोत्सवमें भाग लेनेके लिए अपने विद्यार्थियोंको ले जा रहा हूँ । मैं चाहता हूँ कि मेरे विद्यार्थी उत्तरकूटके किसी गौरवपूर्ण उत्सवमें भाग लेनेसे वञ्चित न रहें और छुटपनसे ही अपने देशका गौरव करना सीखे ।

रणजित्—क्या ये लड़के जानते हैं कि विभूतिने क्या किया है ?

विद्यार्थीगण—(ताली बजाते और कूदते हुए) हाँ, हाँ, हम जानते हैं कि शिवतराईकी प्रजाके पीनेका पानी रोक दिया है।

रणजित्—उसने पानी क्यों रोक दिया है?

विद्यार्थीगण—उन्हें तंग करनेके लिए।

रणजित्—क्यों?

विद्यार्थीगण—कारण कि वे बुरे हैं।

रणजित्—क्यों बुरे हैं?

विद्यार्थीगण—ओह, वे बहुत ही बुरे हैं, बहुत ही खराब हैं, यह सभी जानते हैं।

रणजित्—क्या तुम यह नहीं जानते कि वे क्यों बुरे हैं?

अध्यापक—हाँ महाराज, ये अवश्य जानते हैं। (विद्यार्थियोंसे) तुम्हें क्या हो गया? कूढ़मगज लड़को, क्या तुम्हें नहीं याद रहा? देखो तुम्हारी पुस्तकोंमें—अरे तुम्हारी पुस्तकोंमें—(धीमी आवाजसे) उनका धर्म गन्दा है।

विद्यार्थीगण—हाँ, हाँ, उनका धर्म बहुत ही गन्दा है।

अध्यापक—और वे हमारे समान नहीं हैं। लड़को! जवाब दो, क्या तुम भूल गये? (नाककी ओर संकेत करता है।)

लड़के—हाँ, उनकी नाक ऊँची नहीं होती।

अध्यापक—ठीक, तुम उस सिद्धान्तको जानते हो जिसे हमारे गणाचार्य (प्रोफेसर) ने सिद्ध कर दिया है। अच्छा बोलो तो ऊँची नाक क्या बतलाती है?

विद्यार्थीगण—जातिकी उच्चता।

अध्यापक—ठीक, बहुत ठीक । और उच्च जातियोंका काम क्या है ? वे क्या करती हैं ? बोलो, बोलो । वे सारे संसार पर—हाँ कहो, सारे संसार पर विजय प्राप्त करती हैं । क्यों न ?

विद्यार्थीगण—हाँ, वे सारे संसारको जीतती हैं ।

अध्यापक—क्या उत्तरकूटका आज तक कभी किसी युद्धमें एक बार भी पराजय हुआ है ?

विद्यार्थीगण—नहीं ।

अध्यापक—तुम सबको पता है कि हमारे महाराजके दादा महाराजा प्रागूजित्ने केवल २९३ सिपाही लेकर दक्षिणी बर्बरोंके ३१,७५० सिपाही भगा दिये थे ! क्यों सच है न ?

विद्यार्थीगण—जी हाँ, बिल्कुल सच है ।

अध्यापक—महाराज, निश्चय रखिए कि एक दिन इन्हीं लड़कों-को देख कर वे सब लोग काँपेंगे, जिन्हें हमारे देशकी सीमासे बाहर जन्म लेनेका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है । यदि ऐसा न हो तो मैं सच्चा अध्यापक न समझा जाऊँ । मैं उस उत्तरदायित्वको, जो हम अध्यापकों पर है, एक क्षणके लिए भी नहीं भूलता हूँ । हम मनुष्यों-को बनाते हैं; आपके राजनीतिज्ञ अमात्य तो केवल उनका उपयोग करते हैं । तथापि महाराज, आप जरा हमारे वेतनसे उनके वेतनकी तुलना कर देखिए ।

मन्त्री—परन्तु आपके लिए सबसे बड़े पारितोषिकस्वरूप ये विद्यार्थी तो हैं ।

अध्यापक—ठीक, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, मन्त्री महाराज । सचमुच ये हमारे लिए सबसे बढ़ कर पारितोषिक हैं; परन्तु आज कल

भोजनसामग्री बहुत मँहगी हो गई है। उदाहरणके लिए गौके घीका भाव, जो एक समय—

मन्त्री—इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं गौके घीके भावकी समस्या पर विचार करूँगा। अब तुम जा सकते हो। पूजाका समय हो गया है।

(अध्यापक अपने छात्रोंसे जयध्वनि कराता हुआ जाता है।)

रणजित्—तुम्हारे इस अध्यापककी खोपड़ीमें गायके घीके सिवाय और कोई घी नहीं है।

मन्त्री—पञ्चगव्यमेंसे एक तो कुछ (गोबर!) है ही। तथापि महाराज, ऐसे लोग बड़े कामके होते हैं। उस पाठको जो इन्हें सिखा दिया जाता है, ये बराबर ज्योंका त्यों दोहराते रहते हैं। यदि इनमें अधिक बुद्धि होती, तो ये 'कल'के समान काम न कर सकते।

रणजित्—मन्त्री, आकाशमें वह क्या है?

मन्त्री—क्या आप इसे भूल गये? यह विभूतिके उस यन्त्रका ही शिखर तो है।

रणजित्—मैंने इसे ऐसा स्पष्ट कभी नहीं देखा जैसा कि यह आज दीख रहा है।

मन्त्री—आज आँधीके कारण बादल उड़ गये हैं, इसलिए इतना स्पष्ट दीखता है।

रणजित्—देखो न, इसके पीछे सूर्य मानों क्रोधसे लाल हो रहा है, और यह यन्त्र एक दैत्यकी उद्यत मुट्ठीके समान प्रतीत होता है। इसको इतना ऊँचा उठाना उचित न था।

मन्त्री—ऐसा जान पड़ता है कि अन्तरीक्षके हृदयमें किसीने शूल घुसेड़ दिया है।

रणजित्—चलो, मन्दिर जानेका समय हो गया है।

(दोनों जाते हैं।)

[उत्तरकूटके नागरिकोंका दूसरा दल प्रवेश करता है।]

प्रथम नागरिक—देखो न, आज कल विभूति हमसे कितना बचबच-कर चलता है। वह इस बातको बिल्कुल उड़ा देना चाहता है कि वह हमारे साथ साथ पलकर मनुष्य बना है। एक दिन उसे पता चल जायगा कि तलवारका म्यानसे बढ़ जाना अच्छा नहीं होता।

द्वितीय नागरिक—तुम कुछ भी कहो, पर यह अवश्य है कि उसने उत्तरकूटके गौरवको ऊँचा किया है।

प्र० नागरिक—मूर्खताकी बातें न करो। तुम उसे बहुत बढ़ा रहे हो। वह बाँध—जिसमें उसने अपनी सारी बुद्धि लड़ा दी है—कमसे कम दस बार टूट चुका है।

तृ० नागरिक—और यह कौन जानता है कि वह फिर न टूटेगा?

प्र० नागरिक—क्या तुमने बाँधके उत्तरकी ओरका वह टीला देखा है?

द्वि० नागरिक—सो उसके विषयमें क्या बात है?

प्र० नागरिक—क्या तुम नहीं जानते? जिसने वह देखा है वही कहता है कि—

द्वि० नागरिक—क्या कहता है? बता दो न भैया!

प्र० नागरिक—ओहो, तुम बड़े भोले हो न, इसी लिए पूछ रहे हो! एक छोरसे दूसरे छोरतक यह बात—और क्या कहूँ।

द्वि० नागरिक—तो भी बात क्या है, जरा समझा कर कह दो न।

प्र० नागरिक—भाई रंजन, तूने तो बस हद कर दी। जरा सा भी सब्र नहीं किया जाता। यह बात स्वयं स्पष्ट हो जायगी जब कि एकाएक बिल्कुल—(संकेतके साथ चुप हो जाता है।)

द्वि० नागरिक—उफ! कहते क्या हो भाई? एकाएक बिल्कुल?

प्र० नागरिक—हाँ, इस बातको तुम झगडूसे सुन लेना! वह स्वयं नाप जोखकर देख आया है!

द्वि० नागरिक—झगडूमें यह सबसे अच्छी बात है कि उसका मस्तक ठण्डा है। जब सब लोग 'वाहवाही' में उलझ जाते हैं तब वह अपना गज निकालकर (मापनेके लिए) बैठ जाता है!

तृ० नागरिक—कुछ लोग कहते हैं कि विभूतिका सारा ज्ञान—

प्र० नागरिक—हाँ, हाँ, मैं स्वयं जानता हूँ कि बेंकट वर्म्मासे छीना हुआ है। वह था सच्चा गुणी पुरुष। ओह! उसका कितना विशाल मस्तिष्क था! कैसी अपूर्व मस्तिष्क शक्ति थी! फिर भी सारा इनाम विभूति ही पारहा है और उस बेचारेको पूरा भोजन भी नसीब न हुआ —भूँखों ही मर गया!

तृ० नागरिक—क्या केवल भोजन न मिलनेसे ही?

प्र० नागरिक—अरे भाई भोजन न मिलनेसे भूखों मर गया अथवा किसीके हाथका दिया हुआ खाते खाते मर गया, इससे तुम्हें क्या मतलब है? हम जो कुछ बात कर रहे हैं कहीं कोई सुन लेगा तो—इस देशमें अगणित चुगलखोर फैले हुए हैं। यहाँके निवासी दूसरोंकी भलाई नहीं सह सकते।

द्वि० नागरिक—तुम कुछ भी कहो परन्तु वह—

प्र० नागरिक—इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? जरा सोचो तो कि उसका जन्म किस मिट्टीसे हुआ है! इसी चौबुआ गाँवमें तुम नहीं जानते कि मेरे पितामहका जन्म हुआ था—हाँ तुमने उनका नाम तो सुना है?

द्वि० नागरिक—क्यों नहीं? उत्तरकूटका प्रत्येक मनुष्य जानता है। उनका नाम है—हाँ, तुम उन्हें क्या कहकर पुकारते थे?

प्र० नागरिक—हाँ हाँ, भास्कर! सारे उत्तरकूटमें हुलास बनानेमें कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। इस फनमें वे एक ही थे। उनके हाथके हुलासके बिना महाराज शत्रुजित् एक दिन भी नहीं रह सकते थे।

तृ० नागरिक—ये सब बातें पीछे होंगी। अब हमें मन्दिरको चलना चाहिए। हम ठहरे विभूतिके ग्रामके रहनेवाले। हम लोगोंके हाथकी माला पहले पहनाई जायगी, तब दूसरा कोई काम होगा। और हम ही तो उसकी दाहिनी ओर बैठेंगे।

[नेपथ्यके पीछेसे बटु चिल्लाता है।]

बटु०—मत जाओ, बन्धुओ मत जाओ! इसी रास्ते लौट आओ!

द्वि० नागरिक—यह तो वही बूढ़ा बटु है।

[बटु फटा हुआ कम्बल ओढ़े तथा हाथमें टेढ़ी छड़ी लिये प्रवेश करता है।]

प्र० ना०—कहो बटु, किधर जा रहे हो?

बटु—सावधान भैया, सावधान। इस रास्ते मत जाना। अभी समय है, लौट जाओ।

द्वि० ना०—क्यों भला?

बटु—बोल दूँ? वहाँ वे बलिदान करेंगे—मनुष्योंका बलिदान करेंगे। उन्होंने मेरे दो पौत्रोंको जबर्दस्ती पकड़ लिया था जो अबतक नहीं लौटे हैं।

तृ० ना०—बलिदान! किसके आगे बलि चढ़ायँगे काका?

बटु—उसी तृष्णा डाइनके आगे।

द्वि० ना०—यह तृष्णा डाइन कौन है?

बटु—वह खाकर नहीं अघाती। ज्यों ज्यों खाती है त्यों त्यों उसकी भूख बढ़ती जाती है। उसकी सूखी जीभ घृतसिक्त अग्निशिखाकी नाईं निरन्तर बढ़ती जाती है।

प्र० ना०—अरे पागल! हम तो जा रहे हैं भैरवके मन्दिरको, वहाँ तृष्णा डाइन कहाँसे आई?

बटु—क्या तुमने समाचार नहीं सुना? आज वे लोग भैरवको सिंहासनसे उतार कर उनकी जगह डाइन तृष्णाको बिठायँगे।

द्वि० ना०—पागल, अपनी जीभ सँभाल! उत्तरकूटके मनुष्य यदि तुझको इस तरह बोलते सुनेंगे तो तेरी बोटी बोटी काट डालेंगे।

बटु—वे मेरे ऊपर धूल फेंकते हैं और लड़के मुझे कंकड़ मारते हैं। सभी लोग कहते हैं कि तेरे पौत्रोंका यह सौभाग्य था कि उनके जीवनका बलिदान हो गया।

प्र० ना०—ठीक ही कहते हैं।

बटु—ठीक कहते हैं! यदि प्राणके बदले प्राण न मिले, मृत्युके बदले केवल मृत्यु ही प्राप्त हो, तो भैरव ऐसा सर्वनाश न होने देंगे। सावधान भाइयो, सावधान! उस रास्ते मत जाना। (जाता है ।)

द्वि० ना०—देखो भाई, इसके शब्दोंसे मेरे शरीरमें काँटे उठ आये हैं।

प्रा० ना०—रञ्जू, तुम बड़े कायर हो। चलो अब हमें चलना चाहिए। (सब जाते हैं।)

[राजकुमार संजयके साथ युवराज अभिजित्‌का प्रवेश ।]

सञ्जय—मैं नहीं समझ सकता कि आप राजमहलको छोड़कर क्यों जा रहे हैं?

अभिजित्—तुम इसे पूरी तरह नहीं जान सकते । मैं इस बातको हृदयमें धारण करके ही इस पृथ्वीपर आया हूँ कि मेरे जीवनका स्रोत राजमहलके पत्थरोंको हटाकर चला जायगा।

संजय—हम लोग जानते हैं कि आप इधर कुछ दिनोंसे बहुत अशान्त हो रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह बंधन जो आपको हमारे साथ जोड़े था शनै शनैः ढीला हो रहा है। क्या अब वह सर्वथा टूट गया?

अभिजित्—संजय, गौरीकी चोटी पर सूर्यास्तका दृश्य देखो। मानों कोई अग्निमय पक्षी बादलोंके पंख फैलाये हुए रात्रिकी ओर उड़ा जा रहा है। अस्तकालीन सूर्यने मेरी इस पथयात्राका चित्र आकाशमें अंकित कर दिया है।

संजय—युवराज, मुझे तो यह दृश्य बिल्कुल भिन्न रूपसे दीखता है। देखो, यन्त्रका शिखर सूर्यास्त मेघकी छाती फाड़कर खड़ा है। मानों उड़ते हुए पक्षीकी छातीमें बाण घुस गया है और वह अपने पंखे लटकाकर रात्रिके गढ़ेमें गिर रहा है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अब आरामका समय है। चलो, राजमहलमें चलो।

अभिजित्— जहाँ पर कोई 'बाधा' हो, वहाँ आराम कैसे मिल सकता है?

संजय—राजमहलमें आपके लिए कोई 'बाधा' है? इतने दिनोंके बाद उसे आपने कैसे जाना?

अभिजित्—मुझे 'बाधा' का पता तब लगा जब मैंने सुना कि उन्होंने 'मुक्तधारा' को बाँध दिया है।

संजय—मैं आपके इस कथनका मतलब न समझ सका।

अभिजित्—विधाता प्रत्येक मनुष्यके आन्तरिक जीवनका रहस्य बाह्य जगतमें कहीं न कहीं अवश्य लिख रखता है। मेरे जीवनके गुप्तरहस्यका संकेत 'मुक्तधारा' के झरनेमें है। जब मैंने देखा कि उसकी गतिको प्रतिरुद्ध करनेके लिए उसके पैरोंमें लोहकी बेड़ी डाल दी गई, तब एकाएक मैं चौंक पड़ा और मैंने समझ लिया कि यह उत्तरकूटका सिंहासन ही मेरे जीवनके स्वच्छन्द प्रवाहको रोकनेवाला बाँध है। मैं इसीलिए घरसे निकला हूँ कि उसकी गतिको बाधारहित कर दूँ।

संजय—तो फिर मुझे भी अपने साथ एक सहचरकी तरह रखिए।

अभिजित्—नहीं भाई, तुम्हें अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ना होगा। यदि तुम मेरे पीछे चलोगे, तो मेरे कारण तुम्हारे जीवनका वास्तविक और सच्चा मार्ग छिप जायगा।

संजय—आप इतने कठोर मत बनिए, मुझे चोट लगती है।

अभिजित्—तुम मेरे हृदयको जानते हो, इस लिए चोट खाकर भी तुम मुझे समझोगे।

संजय—मैं यह नहीं पूछना चाहता कि कहाँसे आपके लिए पुकार आई है और उसे सुनकर आप कहाँ जा रहे हैं। किन्तु युवराज, अब सन्ध्या हो गई है, और राजमहलके मीनारसे वायुमें तैरता हुआ रात्रिके आगमनका गीत सुनाई देने लगा है। क्या इसकी पुकार कोई पुकार नहीं है? संसारमें कठोरका गौरव हो सकता है; किन्तु जो मधुर है, उसका भी तो कुछ मूल्य है?

अभिजित्—भाई, मधुरका मूल्य देनेके लिए ही कठिनकी साधना आवश्यक है।

संजय—प्रातःकाल जिस आसनपर आप पूजाके लिए बैठते हैं, क्या आपको स्मरण है कि उस दिन आप उसके सामने एक श्वेत कमलको देख कर अवाक् हो गये थे? किसीने आपके जागनेसे पहले ही उसे चुपचाप लाकर वहाँ रख दिया था। उसने नहीं जानने दिया था कि वह कौन है। इस छोटीसी घटनामें जो मधुरता और सरलता भरी है, उसे क्या आप भुला सकते हैं? क्या उस भीरु व्यक्तिकी स्मृति आपके मनमें बार बार नहीं आती जो अपनेको तो छिपा लेता है किन्तु अपनी पूजाको नहीं छिपा सकता?

अभिजित्—अवश्य आती है। और उसीके प्रेमके कारण ही तो मैं इस बीभत्सताको सहन नहीं कर सकता जो इस पृथ्वीके मधुर संगीतको रोककर आकाशमें अपने लोहेके दाँत फाड़कर अट्टहास कर रही है। मुझे देवताओंके स्वर्गसे प्रेम है, इसीलिए मैं उन दैत्योंसे लड़नेको तैयार हूँ जो स्वर्गको बिगाड़ना चाहते हैं।

संजय—गोधूलिका प्रकाश उस नील पहाड़ीके ऊपर मूर्च्छित हो रहा है। उसमेंसे जो एक प्रकारका रोदन निकल रहा है, क्या वह आपके हृदय तक नहीं पहुँचता?

अभिजित्—पहुँचता है और इसीलिए मेरा हृदय भी रोदनसे भर रहा है। मैं कठोरताका अभिमान नहीं रखता। देखो, वह छोटासा पक्षी देवदारुवृक्षकी सबसे ऊपरकी डालपर बिलकुल अकेला बैठा है। मुझे नहीं मालूम कि वह अपने घोंसलेमें चला जायगा अथवा अन्धकार-मेंसे होकर सुदूरवर्त्ती अरण्यकी यात्रा करेगा। परन्तु वह इस अस्त-

कालीन सूर्यकी अन्तिम किरणकी ओर चुपचाप देख रहा है और उसका यह देखना मेर हृदयको एक प्रकारके मधुर विषादसे भर देता है। यह पृथिवी कितनी सुन्दर है! संसारमें जिन जिनने हमारे जीवनको मधुमय किया है उन सबको ही मैं आज प्रणाम करता हूँ।

[बटुका प्रवेश।]

बटु—उन्होंने मुझे नहीं जाने दिया, मार मारकर लौटा दिया।

अभिजित्—बटु, तुम्हें यह क्या हो गया? तुम्हारे माथेसे तो खून बह रहा है।

बटु—मैं उन्हें सावधान करने निकला था। मैंने उनसे कहा था कि "खबरदार, इस रास्ते मत जाना, लौट जाओ!"

अभिजित्—क्यों? क्या हुआ है?

बटु—राजकुमार, क्या तुम्हें पता नहीं है कि आज वे लोग यन्त्रकी वेदीपर तृष्णा राक्षसीका अभिषेक करेंगे और उसके आगे मनुष्योंकी बलि चढ़ाई जायगी।

संजय—यह तुम क्या कह रहे हो?

बटु—वे इस वेदीकी नीव रखते समय मेरे दो पौत्रोंका खून बहा चुके हैं। मैंने सोचा था कि यह पापकी वेदी अपने पापके बोझसे ही गिरकर चूर हो जायगी; परन्तु अब तक तो यह हुआ नहीं। भैरव देव अब भी निद्रासे नहीं जागे।

अभिजित्—वह अवश्य चूर हो जायगी, अब समय आगया है।

बटु—(पास आकर कानमें कहता है) तो आपने भैरवका आह्वान अवश्य सुना होगा?

अभिजित्—हाँ, मैंने सुना है।

बटु—सर्वनाश ! तब क्या आपका बचाव नहीं हो सकता ?

अभिजित्—नहीं, नहीं हो सकता।

बटु—क्या आप मेरे घावसे बहते हुए रक्तको नहीं देखते ? मेरा सारा शरीर धूल मिट्टीसे गंदा हो रहा है। क्या आप सहन कर सकेंगे, जब आपका हृदय विदीर्ण हो जायगा ?

अभिजित्—भैरवकी कृपासे मैं सह सकूँगा।

बटु—जब सब लोग आपके शत्रु हो जावेंगे और स्वतः आपके इष्टजन भी आपको धिक्कारेंगे ?

अभिजित्—सहना ही होगा।

बटु—तब तो फिर कोई भय नहीं है।

अभिजित्—नहीं, कोई भय नहीं है।

बटु—वाह वाह। तब तो इस बटुको याद रखना। मैं भी इसी मार्ग पर चल रहा हूँ। आप मुझे इस रक्तके तिलकसे—जिसे स्वतः भैरवने मेरे माथे पर लगा दिया है—अन्धकारमें भी पहिचान सकेंगे। (बटु जाता है।)

[राजाके पहारेदार उद्धवका प्रवेश।]

उद्धव—(युवराजसे) श्रीमन् ! आपने नन्दी घाटीका मार्ग क्यों खोल दिया ?

अभिजित्—शिवतराईके लोगोंको नित्यके दुर्भिक्षोंसे बचानेके लिए।

उद्धव—हमारे महाराज दयालु हैं। वे तो उनकी सहायताके लिए सदा तैयार रहते हैं।

अभिजित्—दायें हाथसे कृपणताके साथ दानका द्वार बन्द करके बाँयें हाथसे वदान्यता दिखाना कोई अर्थ नहीं रखता। इस लिए मैंने खाद्य सामग्रीके आने जानेका मार्ग खोल दिया है। दयाके ऊपर निर्भर रहनेवाली दीनताको मैं नहीं देख सकता।

उद्धव—महाराज कहते हैं कि आपने नन्दी घाटीके प्राकारको तोड़ कर उत्तरकूटके भोजनभाण्डारकी जड़ हिला दी है।

अभिजित्—मैंने उत्तरकूटको शिवतराईके अन्न पर आश्रित रहनेकी दुर्गतिसे सदाके लिए बचा लिया है।

उद्धव—यह आपने बड़े दुस्साहसका काम किया है। महाराज तक यह समाचार पहुँच चुका है, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकता। यदि बन सके, तो आप इस स्थानको छोड़ दीजिए। मेरे लिए यह अच्छा न होगा कि मुझे कोई इस मार्गमें आपसे बातें करते हुए भी देख ले। (जाता है।)

[अम्बाका प्रवेश।]

अम्बा—सुमन! मेरे प्यारे! क्या तुममेंसे कोई भी उस मार्गसे नहीं गया जिससे कि वे मेरे सुमनको ले गये थे?

अभिजित्—वे तुम्हारे पुत्रको ले गये हैं?

अम्बा—हाँ, उस पश्चिमकी ओर, जहाँ सूर्य डूबता है और दिनका अन्त हो जाता है।

अभिजित्—मेरी यात्रा भी उसी मार्गकी ओर है।

अम्बा—तो मुझ दुःखिनीकी एक बात याद रखना। जब वह तुम्हें मिले तो उससे कहना कि माँ तेरी प्रतीक्षा कर रही है।

अभिजित्—हाँ, मैं कह दूँगा।

अम्बा—तुम चिरञ्जीवी होओ, सुमन, प्यारे सुमन!

(जाती है।)

[भैरवके पुजारियोंका गाते हुए प्रवेश।]

जय भैरव, जय शंकर,
जय जय जय प्रलयङ्कर।
जय संशय-छेदन, जय बन्धन-छेदन
जय संकट-संहर,
शंकर, शंकर!

(चले जाते हैं।)

[सेनापति विजयपालका प्रवेश।]

विजयपाल—युवराज, राजकुमार, मेरे नम्र प्रणामको स्वीकार करो। मैं राजाके पाससे आया हूँ।

अभिजित्—उनकी क्या आज्ञा है?

विजयपाल—वह आज्ञा मैं एकान्तमें सुनाऊँगा।

संजय—(अभिजित्का हाथ दबा कर) एकान्तमें क्यों? क्या मुझसे भी छिपा कर?

विजयपाल—मुझे ऐसी ही आज्ञा मिली है। युवराज, मेरी प्रार्थना है कि आप एक बार राजशिविरमें पदार्पण करें।

संजय—मैं भी उनके साथ चलूँगा।

विजयपाल—नहीं, ऐसा करना महाराजकी इच्छाके विरुद्ध है।

संजय—अच्छा, तो मैं इस मार्ग पर ही खड़ा रह कर प्रतीक्षा करूँगा।

(अभिजित्को लेकर विजयपाल शिविरकी ओर जाते हैं।)

[वैरागीका प्रवेश।]

गान

वह तो अब फिर फिरि है ना रे,
फिरि है ना रे, फिरि है ना रे!
परी नाव आँधीके मुखमें—
फेर किनारे भिरि है ना रे!
कौन बावरेने धरि टेऱ्यौ,
रोदन पाछें तजि, मुख फेऱ्यौ,
अब वह तेरे बाहुपासतें—
घिरि है ना रे, घिरि है ना रे!

[फूलवालीका प्रवेश।]

फूलवाली—क्यों भैया, उत्तरकूटका रहनेवाला यह विभूति कौन है?

संजय—क्यों, तुम उसे क्यों ढूँढ़ती हो?

फूलवाली—मैं विदेशी हूँ और देवतलीसे आई हूँ। सुना है, उत्तरकूटके सभी लोग उसके मार्गमें फूल बखेरते हैं। अवश्य ही वह कोई सन्त होगा। ये फूल मैं स्वतः अपनी वाटिकासे उसे भेट करने लाई हूँ और उसका दर्शन करना चाहती हूँ।

संजय—वह सन्त तो नहीं, किन्तु एक चतुर मनुष्य अवश्य है।

फूलवाली—भला, उसने ऐसा कौनसा काम किया है?

संजय—उसने हमारे झरनेको बाँध दिया है।

फूलवाली—क्या यह सब पूजा इसीलिए है? क्या झरनेको बाँधनेसे ईश्वरका कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?

संजय—नहीं, ईश्वरके हाथोंमें हथकड़ी पड़ जायगी।

फूलवाली—क्या इसीलिए उसके मार्गमें पुष्पवृष्टि होती है ? कुछ समझमें नहीं आता ।

संजय—इसको न समझनेमें ही भलाई है । देवयोग्य फूलोंको एक अपात्रके लिए बरबाद मत करो, लौट जाओ ! जरा ठहरो, क्या तुम वह सफेद कमल मुझे बेचोगी ?

फूलवाली—मैं इस फूलको—जिसे अपने मनमें एक सन्तको अर्पण करनेका संकल्प करके लाई हूँ—बेच नहीं सकती ।

संजय—मैं जिस संतकी सबसे अधिक भक्ति करता हूँ उसको ही यह भेट दूँगा ।

फूलवाली—तो इसे ले सकते हो । नहीं, मैं इसका मूल्य न लूँगी । सन्त बाबाको मेरा प्रणाम कहना, और कहना कि मैं देवतलीकी दुखिया मालिन हूँ । (जाती है ।)

[विजयपालका प्रवेश ।]

संजय—युवराज कहाँ हैं ?

विजयपाल—वे शिविरमें कैद हैं ।

संजय—युवराज कैद कर लिये गये ! इतनी बड़ी धृष्टता !

विजयपाल—देखिए, महाराजका यह आदेश पत्र है ।

संजय—यह षड्यन्त्र किसने रचा है ? मुझे एकबार उसके पास जाने दो ।

विजयपाल—क्षमा कीजिए, आप नहीं जा सकते ।

संजय—अच्छा तो मुझे भी कैद कर लो । मैं विद्रोही हूँ ।

विजयपाल—नहीं, मुझे ऐसी आज्ञा नहीं है।

संजय—अच्छा तो मैं स्वयं चलकर उनसे आज्ञा ले लूँगा। (कुछ चलकर फिर लौट आता है) हाँ विजयपाल, युवराजको यह श्वेत कमल मेरी ओरसे भेट कर देना।

(दोनों जाते हैं।)

[शिवतराईके वैरागी धनंजयका प्रवेश। *]

गाता है—

हम मारके सागरकों तरि हैं,
चले चाहे जिती विपरीत बयार।
भयजर्जर या निज नावहिंसों,
हम पाय हैं, पाय हैं, पाय हैं पार॥
करि 'माभैः' शब्द भरोसो भलो,
फटे पालसों आपनी छाती फुलाय।
तुम्हरे यहि तीरसों जै है तरी,
वटवृक्ष तिहारेकी छायहिं छाय॥
पथदर्सक है है हमारो सोई—
जोई चाहत है है हमें मनमाहिं।
हम निर्भय चित्तसों छोड़ें तरी,
करतव्य अहै इतनों हम काहिं॥
दिन पूरो भयो हम जानि गये,
अब कैस हुँ पायके सागर-कूल।
तुम्हरे करुनापदमें दुख चाँसको-
आनि चढ़ाइ हैं रक्तिम फूल॥

[शिवतराईके लोगोंका एक दल आता है।]

धनंजय—अरे तुम्हारा मुँह तो बिल्कुल सफेद पड़ गया है! कहो क्या बात है!

---

*इस नाटकका पात्र धनंजय और उसके कथोपकथनका बहुतसा अंश रवीन्द्र बाबूने अपने 'प्रायश्चित्त' नामक नाटकसे—जो लगभग १५ वर्ष पहलेका लिखा हुआ है—लिया है।

पहला नागरिक—बाबाजी, अब हमसे राजाके साले चण्डपालकी मार नहीं सही जाती। वह हमारे युवराजको भी कुछ नहीं समझता। यह और भी असह्य है।

धनंजय—अरे तुम अभी तक 'मार' को भी नहीं जीत सके? अब भी 'मार'से दुःख होता है?

दूसरा ना०—राजाकी डेवढ़ी पर ले जाकर मार! यह क्या साधारण अपमान है!

धनंजय—तुम अपने मानको अपने पास मत रक्खो। उसे, तुम्हारे भीतर जो भगवान् विराजमान हैं, उन्हींके चरणोंके समीप रख दो। ऐसा करनेसे अपमान वहाँतक न पहुँच सकेगा।

[गणेश सर्दारका प्रवेश।]

गणेश—अब नहीं सहा जाता। हाथोंमें खुजली आ रही है। अब बिना मारे नहीं रहा जाता।

धनंजय—तब यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे हाथ ही 'बेहाथ' हो गये हैं?

गणेश—बाबाजी, एक बार आज्ञा दो, तो मैं इस चण्डपालके डंडेको छीन कर बतला दूँ कि 'मार' किसे कहते हैं?

धनंजय—पर क्या तुम यह नहीं बतला सकते कि 'न मारना' किसे कहते हैं? इसके लिए ज्यादा ताकत चाहिए, क्यों न? लहरों पर डाँड़ मारनेसे लहरें नहीं रुक सकतीं, परन्तु पतवार स्थिर कर रखनेसे लहरों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

चौथा ना०—तो फिर आप क्या चाहते हैं?

धनंजय—इस 'मार' की जड़में ही कुल्हाड़ी मार दो।

गणेश—भला यह कैसे हो सकता है बाबाजी?

धनंजय—सिर ऊँचा करके ज्यों ही यह कह सकोगे कि हमें 'मार'की चोट नहीं लगती, त्यों ही 'मार'की संकल टूट जायगी।

गणेश—यह कहना तो कठिन है कि चोट नहीं लगती।

धनंजय—जो वास्तविक मनुष्य है उसके चोट नहीं लगती, क्योंकि वह प्रकाशकी शिखाके तुल्य है। चोट लगती है जानवरको, क्योंकि वह मांसपिण्ड है। वह मार खाकर चिल्ला उठता है। मुँह फाड़े क्यों खड़े हो? मेरी बात नहीं समझे!

दू० नागरिक—हम तो आपको समझते हैं। आपकी बातको भले ही न समझें।

धनंजय—इसीसे तो नाश हुआ है।

गणेश—आपकी बात समझनेमें विलम्ब लगता है और वह सहा नहीं जाता। आपको समझ लिया है, इसीसे हम बहुत जल्दी—सबेरे सबेरे—पार हो जायँगे।

धनंजय—परन्तु इसके बाद जब दिन ढल जायगा तब देखोगे कि नाव किनारेके बिल्कुल पास पहुँचकर डूब गई है। जो बात पक्की है, उसको भीतरसे पक्की करनी चाहिए। यदि इसको नहीं समझोगे तो डूब जाओगे।

गणेश—बाबाजी, ऐसा मत करो। जब तुम्हारे चरणोंका आश्रय पा लिया है तब चाहे जैसे हो हमने तुम्हें समझ जरूर लिया है।

धनंजय—यह समझनेमें अब कुछ बाकी नहीं रहा है कि तुम नहीं

समझे हो। देखो तुमारे नेत्र लाल हो रहे हैं और (क्रोधके कारण) तुम्हारा सुर संगीतहीन हो रहा है। अच्छा तुम्हें एक तान सुनाऊँ?

गीत।

प्रभो! और हू, तनिक और हू,
याहि भाँतितें मारो! मारो!

अरे कायरो! तुम चोटसे बचनेके लिए या तो दूसरोंको चोट पहुँचाते हो या भाग जाते हो। परन्तु ये दोनों ही प्रकार समान रूपसे कायरताके हैं। इन दोनोंहीसे पशुपति (ईश्वर) का साक्षात्कार नहीं होता।

गीत।

लुके छिपे हम इत उत धावत,
भयबस तुम्हरे निकट न आवत,
जो कछु है सो सबहि निकारो!
याहि भाँतितें मारो मारो!

देखो बच्चो, मैं मृत्युंजय (मृत्युके जीतनेवाले भैरव) के साथ बातचीत करनेके लिए जा रहा हूँ और उससे कहना चाहता हूँ कि "तुम स्वयं अच्छी तरह जाँच करके देख लो कि चोट मुझे लगती है या नहीं।" ऐसी अवस्थामें मैं उन लोगोंका बोझा सिरपर रखकर नहीं चल सकूँगा जो स्वयं डरते हैं या दूसरोंको डराते हैं।

गीत।

अबकी बार यही निरधारो–करनो होय सोई कर डारो,
हारें हमहिं कि तुम ही हारो! याहि भाँतितें मारो! मारो!
हाटबाटके हेलमेलमें, समय गयो सब हँसी खेलमें,
कैसें हमें रुवाय सकत हौ, देखहिं तो, हाँ, वार तिहारो!
याहि भाँतितें मारो! मारो!

सब—धन्य है बाबाजी! ऐसा ही है!

कैसे हमें रुवाय सकत हौ, देखहिं तो, हाँ, वार तिहारो।
याहि भाँतितें मारो! मारो!

दू० नागरिक—किन्तु आप जा कहाँ रहे हैं?

धनंजय—राजाके उत्सवमें।

ती० ना०—बाबा, राजाके लिए जो उत्सव है कौन कह सकता है कि आपके लिए वह क्या बन जायगा? वहाँ आप किस लिए जाते हैं?

धनंजय—राजसभामें अपना नाम अमर कर आऊँगा।

चौथा ना०—राजाने यदि आपको हाथमें कर पाया तो—नहीं नहीं, यह नहीं होगा।

धनंजय—अरे बच्चो, होगा क्यों नहीं? खूब होगा, जी भरकर होगा।

पहला ना०—बाबाजी, तुम तो राजाको नहीं डरते, किन्तु हमें डर लगता है।

धनंजय—तुम लोग मन ही मन मारना चाहते हो, इसी लिए डरते हो। परन्तु मैं मारना नहीं चाहता, इस लिए डरता भी नहीं हूँ। जिसके हृदयमें हिंसा रहती है, भय उसके पीछे लगा रहता है।

दूसरा ना०—अच्छा तो हम भी आपके साथ चलेंगे।

तीसरा ना०—और राजाके दरबारमें शामिल होंगे।

धनंजय—राजासे तुम लोग क्या माँगोगे?

तीसरा ना०—माँगनेको तो बहुतसा है, परन्तु जब वह कुछ देगा तब न?

धनंजय—तुम उसका राज्य ही क्यों न माँग लो?

तीसरा ना०—बाबा, आप तो हँसी करते हैं।

धनंजय—हँसी क्यों करूँगा? एक पैरसे चलना बड़ा ही दुःखप्रद है। यदि राज्य केवल राजाका ही हो, उस पर प्रजाका कोई स्वत्व न हो, तो ऐसे एक पैरके राज्यका छलाँगें भर कर चलना देखकर तुम तो केवल चौंक ही पड़ोगे, किन्तु देवताओंकी आँखोंसे आँसू बहने लगेंगे। अरे बच्चो, तुम्हें और किसीके लिए नहीं तो राजाकी ही भलाईके लिए, राज्य पर अपना दावा पेश करना चाहिए।

दूसरा ना०—और जब वहाँ धक्के पड़ेंगे तब?

धनंजय—यदि तुम्हारे स्वत्वके दावेमें कुछ सचाई होगी तो राजाका दिया हुआ धक्का स्वतः उसीके ऊपर लौट जायगा।

गीत। (राग हमीर)

हम भूल जात हैं फेरि फेरि।
तुम निज आसनपै चहत बिठावन,
नाम हमारो टेरि टेरि॥

बच्चो, क्या तुम्हें यथार्थ रहस्य समझाऊँ? जब तक इस सिंहासनको उस प्रभुका नहीं समझोगे तब तक सिंहासनपर किसीका दावा नहीं चल सकता,—राजाका भी नहीं और प्रजाका भी नहीं। वह छाती तानकर ऐंठके साथ बैठनेकी जगह नहीं है; उसपर तो हाथ जोड़कर बैठना चाहिए।

गीत।

द्वारपाल हमको नहिं चीन्हत, मगमें बाधा देत।
बाहर ठाढ़े हैं हम, भीतर, काहे टेरि न लेत?
हम भूल जात हैं फेरि फेरि॥

द्वारपाल क्या हमें जानबूझकर नहीं पहिचानता? हमारे मस्तकोक राजचिह्नपर धूल जम गई है। जब हम अपने भीतरी विकारोंपर शासन नहीं कर सकते, तब बाहरका राज्यशासन कैसे करेंगे? राजा होनेसे राजासनपर बैठा जा सकता है, पर बैठनेसे ही कोई राजा नहीं हो सकता।

अपने प्रान समरपित कीन्हें, मानसहित तुव हाथ।
रहिबे पै हु रहि न सकत वह, मान, मानकें साथ—
भय, लाज और लोभादिक दिन-दिन, म्लान करत तेहि घेरि घेरि।
ढूँपि जात धूरिके ढूहनसों, पद-दलित होत वह बेरि बेरि॥
हम भूल जात हैं फेरि फेरि।

पहला नागरिक—आप कुछ भी कहें; पर हमारी समझमें नहीं आता कि आप राजाके दरबारमें क्यों जाते हैं!

धनंजय—बताऊँ कि क्यों? मेरे मनमें तुम्हारे विषयमें बहुत बड़ा सन्देह हो गया है।

पहला ना०—सो क्या?

धनंजय—तुम लोग मुझे जितना ही पकड़कर चिपटते हो, उतना ही अपना सीखा हुआ तैरना भूल जाते हो और तब मेरा भी पार होना कठिन हो जाता है। इसी लिए तुमसे छुट्टी चाहता हूँ और वहाँ जाता हूँ जहाँ कोई मेरे पीछे न जा सके।

पहला ना०—परन्तु राजा तो आपको सहजमें छोड़ देनेवाला नहीं है।

धनंजय—छोड़ेगा क्यों ! यदि वह हमको बाँध सका, तो फिर और चिन्ता ही क्या रही ?

गीत।

मुझको पकड़ बाँध लेना ही बस, जिनका साधन होगा
वह क्या ऐसे ही होगा ?
मेरे पास बँधेगा आकर, वह मेरा बन्धन होगा
वह क्या ऐसे ही होगा ?
कौन भरोसा रखता मुझको, लानेका अपने बसमें ?
वह क्या ऐसे ही होगा ?
अपनेको क्यों करै न बस वह, सत्वर डूब प्रेम रसमें
वह क्या ऐसे ही होगा ?
चाहेगा जो मुझे रुलाना, रोनेका भाजन होगा
वह क्या ऐसे ही होगा ?

दूसरा नागरिक—किन्तु बाबा, यदि तुम्हारे शरीरपर उन्होंने अपना हाथ उठाया तो यह हमसे न सहा जायगा।

धनंजय—मैंने अपना यह शरीर जिसके चरणोंपर निछावर कर दिया है, यदि वह सह लेगा तो तुम भी सह लोगे।

पहला ना०—अच्छा ऐसा ही सही। तो चलिए बाबाजी, वहाँ क्या होता है सो सुन आवें और सुना आवें। इसके बाद जो कुछ भाग्यमें होगा सो देखा जायगा।

धनंजय—तो तुम लोग यहीं बैठो और मेरी प्रतीक्षा करो। इस जगह कभी आया नहीं हूँ, जरा आसपासके रास्ता–घाटोंसे कुछ परिचित हो आऊँ। (प्रस्थान।)

पहला नागरिक—देखते हो भाई, इन उत्तरकूटके मनुष्योंका चेहरा कैसा है ? ऐसा माळूम होता है कि मानों विधाताने एक माँसका लोथड़ा

लेकर गढ़ना शुरू किया हो, और पीछे उसे पूरा करनेकी फुरसत न मिल पाई हो।

दूसरा ना०—और देखते हो कि उनका कपड़े पहिरनेका ढंग कैसा है?

तीसरा ना०—आपको बंडलकी तरह, ऐसा मजबूतीसे कस लेते हैं कि जिसमें कहींसे कुछ गिर न जाय।

पहला ना०—वे मजूरी करनेके लिए ही जन्मे हैं। सात घाटका पानी पीने और सत्रह हाट घूमनेमें ही उनकी जिन्दगी पूरी हो जाती है।

दूसरा ना०—उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं मिलती। और उनके शास्त्र देखो, उनमें भी कुछ नहीं है।

पहला ना०—कुछ भी नहीं। देखते नहीं हो, उनके अक्षर दीमकके कीड़ों जैसे होते हैं।

दूसरा ना०—ठीक कहते हो। दीमक जैसे ही होते हैं। उनकी विद्या जहाँ लगी कि खाकर बरबाद कर दिया।

तीसरा—और वहाँ मिट्टीका ढेर खड़ा कर दिया।

दूसरा—वे अपने अस्त्रोंसे दूसरोंके प्राण और शास्त्रोंसे मन नष्ट कर देते हैं।

पहला—पाप! घोर पाप! हमारे गुरुजी कहते हैं कि उनकी छायासे भी बचना चाहिए! जानते हो क्या?

तीसरा—तुम्ही बताओ न?

दूसरा ना०—क्या तुम नहीं जानते? जब देवता और राक्षस

समुद्रसे अमृतका मन्थन कर चुके तब अमृतके कुछ बूँद देवताओंके प्यालोंसे छलक कर मिट्टी पर गिर गये। उसी मिट्टीसे शिवतराईवालोंके पूर्व पुरुषका निर्माण हुआ। और जब राक्षसोंने देवोंके खाली प्यालोंको चाट चाट कर नाबदानमें फेंक दिया, तब उन टुकड़ोंसे उत्तरकूटके प्रथम पुरुषको बनाया। यही कारण है कि वे इतने कठोर और थूः—इतने अपवित्र होते हैं।

तीसरा ना०—ये सब बातें तुमने कहाँसे पाईं?

दूसरा ना०—स्वतः गुरुजीने ही कही थीं।

तीसरा ना०—(श्रद्धासहित गुरुके उद्देश्यसे प्रणाम करके) धन्य गुरुजी! तुम सच्चाईके रूप हो।

[उत्तरकूटके नागरिकोंके समूहका प्रवेश।]

पहला ना०—आजके उत्सवमें और तो सब कुछ ठीक हुआ; परन्तु उस लुहारके लड़के विभूतिको राजाने एकदम क्षत्रिय बना दिया, यह कुछ—

दूसरा ना०—अजी, यह अपने घरका झगड़ा है। जब वह लौटकर अपने गाँव जायगा, तब देख सुन लेंगे। इस समय तो हमें पुकारना चाहिए—"यन्त्रराज विभूतिकी जय!"

तीसरा ना०—जिसने क्षत्रियके अस्त्र और वैश्यके यन्त्रका मिलाप कर दिया, उस यन्त्रराज विभूतिकी जय!

पहला ना०—ओ! हो! यहाँ तो कुछ शिवतराईके भी मनुष्य आये हैं।

दूसरा ना०—यह तुमने कैसे जाना?

पहला ना०—क्या तुम उनके कनटोपे नहीं देखते? देखो तो वे कैसे अद्भुत जँचते हैं! ऐसा मालूम होता है कि मानों किसीने ऊपरसे थप्पड़ मार कर उनकी बाढ़ ही रोक दी हो!

दूसरा ना०—और क्यों जी, इतने देश हैं उन सबमेंसे केवल इसी देशके लोग क्यों यह कानोंको ढक देनेवाली टोपी पहिनते हैं? क्या ये सोचते हैं कि कान बनाना विधाताकी भूल है?

पहला ना०—उन्होंने अपने कानों पर एक बाँध बाँध दिया है, जिससे कि थोड़ी बहुत अक्ल जो उनके अन्दर है वह भी कहीं निकल न जाय! (सबके सब हँसते हैं।)

तीसरा ना०—नहीं, यह इसलिए है कि कहीं कोई समझकी बात उनके अन्दर न घुस जाय! (हास्य।)

पहला ना०—कहीं कोई उत्तरकूटका कान खींचनेवाला भूत उनका पीछा न करने लगे! (हँसता है।) अरे शिवतराईके गँवारो, तुम कर क्या रहे हो? चुपचाप क्यो खड़े हो?

तीसरा ना०—तुम नहीं जानते कि आज हमारा बड़ा दिन है। आओ और हमारे साथ पुकारो—"यन्त्रराज विभूतिकी जय।"

पहला ना०—फिर भी चुप हो! क्या तुम्हारे गले बन्द हो गये हैं? पुकारो। जान पड़ता है कि गर्दन दबाये बिना आवाज नहीं निकलेगी। बोलो—"यंत्रराज विभूतिकी जय!"

गणेश—क्यों जी, विभूतिकी जय क्यों बोलें? उसने किया क्या है?

पहला ना०—देखो तो यह क्या कहता है—"उसने क्या किया है!" अभीतक विभूतिके अद्भुत कार्यकी खबर भी इन तक नहीं पहुँची? देखा, यह कान ढँकनेवाली टोपीका ही प्रताप है!

तीसरा ना०—तुम पूछते हो कि उसने क्या किया है? जानते नहीं कि तुम्हारी प्यास बुझानेवाला पानी उसीके हाथमें है? यदि वह दया न करे तो तुम उसी तरह सूखकर मर जाओगे जिस तरह सूखा पड़नेपर मेंढ़क मर जाते हैं।

दूसरा शि० ना०—हमारा पानी विभूतिके हाथमें है? क्या वह एकदम ईश्वर हो गया?

दूसरा उ० कू० ना०—उसने ईश्वरको उसके कामसे छुट्टी दे दी है। अब वह ईश्वरका काम स्वयं करेगा।

पहला शि० ना०—क्या उसके कामका कोई नमूना दिखा सकते हो?

पहला उ० कू० ना०—हाँ, 'मुक्तधारा' का वह बाँध मौजूद है।

(शिवतराईके सारे नागरिक जोरसे हँसते हैं।)

दूसरा उ० कू० ना०—क्या तुम इसे मजाक समझते हो?

गणेश—मजाक नहीं तो और क्या है? वह बेचारा मुक्तधाराको बाँध देगा? जिसे साक्षात् भैरवने अपने हाथसे दिया है, उसे वह तुम्हारा लुहारका लड़का छीन लेगा?

पहला उ० कू० ना०—अरे! अपनी आँखोंसे ही क्यों नहीं देख लेते? वह आकाशमें क्या दिखलाई देता है?

दूसरा शि० ना०—अरे बापरे! यह क्या है?

तीसरा शि० ना०— यह तो लोहेका एक बड़ा भारी टिड्डा सा जान पड़ता है, मानो आकाशमें छलांग मारने जारहा है!

दूसरा उ० कू० ना०—वह टिड्डा अपनी टाँगसे तुम्हारे पानी-को रोक देगा।

गणेश —इन सब फिजूल बातोंको रहने दो। एक दिन तुम कहोगे कि यह लुहारका लड़का इस टिड्डेके डैनों पर सवारी करके चाँद पकड़ने जायगा!

पहला उ० कू० ना०—यह इनके कनटोपेकी खूबी है। सुनकर भी नहीं सुनना चाहते और इसीसे मरते हैं!

पहला शि० ना०—हमने प्रतिज्ञा की है कि मरकर भी न मरेंगे!

तीसरा उ० कू० ना०—प्रतिज्ञा बहुत अच्छी की है; पर यह तो कहो कि तुम्हें बचावेगा कौन?

गणेश—क्या तुमने हमारे देवताको नहीं देखा है? हमारे धनंजय वैरागी प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका एक शरीर मन्दिरमें और दूसरा बाहर है।

तीसरा उ० कू० ना०—कनटोपे लगाये हुए इन आदमियोंकी मूर्खता तो देखो। इन्हें मरनेसे कोई नहीं बचा सकता।

(उत्तरकूटके नागरिक बाहर जाते हैं।)

[धनंजयका प्रवेश।]

धनंजय—मूर्खो! तुम क्या कह रहे थे? क्या तुम्हें मौतसे बचानेका भार मेरे ऊपर है? तब तो तुम अपनेको सात बार मरा समझो।

गणेश—उत्तरकूटके लोग हमसे धमकाकर कह गये हैं कि विभूतिने बाँध बाँधकर मुक्तधाराका पानी रोक दिया है!

धनंजय—बाँध बाँध दिया, ऐसा कहा है?

गणेश—हाँ, बाबा।

धनंजय—उनकी सब बात सुन ली है न?

गणेश—वह क्या सुननेकी बात थी? हमने तो हँसकर उड़ा दी।

धनंजय—क्या तुम सबने अपने कान अकेले मेरे ही जिम्मे कर दिये हैं? तुम सबके सुननेकी बात भी मुझे ही सुनना होगी?

तीसरा शि० ना०—उसमें सुननेकी बात ही क्या थी!

धनंजय—क्या किसी दुरन्त शक्तिको, चाहे वह अन्दरकी हो या बाहरकी, नियन्त्रित कर लेना कोई छोटी बात है?

गणेश—पर इसीसे क्या वे हमारी प्यास बुझानेवाले पानीको रोक देंगे?

धनंजय—यह दूसरी बात है। भैरव इसे कभी न होने देंगे। तुम लोग ठहरो, मैं जाता हूँ और इस विषयमें पता लगाकर आता हूँ। यह जगत् वाणीमय है। उसकी जिस दिशासे सुनना बन्द किया जायगा, उस दिशासे ही मृत्युका वाण आकर हमारे ऊपर पड़ेगा।

[शिवतराईसे आये हुए एक अन्य नागरिकका प्रवेश।]

तीसरा शि० ना०—कहो विशन, क्या समाचार है?

विशन—राजाने राजकुमारको शिवतराईसे वापिस बुला लिया है। अब उन्हें वहाँ न रक्खा जायगा।

सब—ऐसा नहीं होगा, किसी तरह नहीं होगा।

विशन—क्यों नहीं होगा? तुम क्या करोगे?

सब—हम उन्हें वापिस ले आयँगे।

विशन—कैसे?

सब—अपनी शक्तिसे।

विशन—राजाके आगे तुम्हारी कैसे चलेगी?

सब—हम राजाको नहीं मानते।

[राजा रणजित्का मन्त्रीसहित प्रवेश ।]

रणजित्—किसे नहीं मानते हो?

सब—(राजासे) महाराजकी जय हो!

गणेश—हम आपके पास एक प्रार्थना लेकर आये हैं।

रणजित्—क्या?

सब—हम युवराजको चाहते हैं।

रणजित्—कहते क्या हो?

पहला शि० ना०—हाँ, हम उन्हें शिवतराइ वापिस ले जायँगे।

रणजित्—और तब आनन्दमें मस्त होकर कर (टैक्स) देना भूल जाओगे

सब—हम तो बिना अन्नके भूखों मर रहे हैं।

रणजित्—तुम्हारा सरदार कहाँ है?

दूसरा शि० ना०—(गणेशकी ओर संकेत करके) यही तो हमारे गणेश सरदार हैं।

रणजित्—नहीं, यह नहीं, तुम्हारा वह वैरागी कहाँ है?

गणेश—वे आरहे हैं।

[धनंजयका प्रवेश ।]

रणजित्—तुमने इस समस्त प्रजाको पागल बना दिया है?

धनंजय—हाँ महाराज, और स्वयं भी पागल हो गया हूँ।

गीत—

गलियों गलियों हमें घुमाता
पागल कर, पागल वह कौन?
मोहन सुरसे, किस समीरमें,
बजा रहा है क्या, यह कौन?

गई, गई रे! सारी बेला!
पागलकी यह कैसी खेला!
आकुल करता है पुकार कर,
नहीं पकड़में आता है!
वन वन उसे खोजते, रोते,
किस अग्निसे जलाता है!

रणजित्—इस तरहके पागलपनसे तुम असली बातको नहीं दबा सकोगे। बोलो, कर दोगे या नहीं?

धनंजय—नहीं महाराज, न देंगे।

रणजित्—न दोगे? इतनी बड़ी हिमाकत?

धनंजय—जो चीज आपकी नहीं है, वह आपको नहीं दी जा सकती।

रणजित्—हमारी नहीं है?

धनंजय—जो हमारे खानेसे बचता है, उसी अन्न पर आपका अधिकार है; हमारे भूखके अन्नको आप नहीं ले सकते।

रणजित्—क्या तुम ही हमारी प्रजाको कर देनेसे रोकते हो?

धनंजय—हाँ। वे लोग तो भयके मारे दे देना चाहते हैं; परन्तु मैं उन्हें रोक देता हूँ कि अपने प्राण उसीको दो जिसने तुम्हें प्राण दिये हैं।

रणजित्—तुम्हारे भरोसे या ढाढसने ही उन लोगोंके भयको दबा रक्खा है; परन्तु याद रक्खो कि बाहरका यह भरोसा यदि कहींसे जरासा भी फट गया, तो भीतरका भय सात गुने जोरसे भड़क उठेगा। उस समय ये बुरी तरह मरेंगे। देखो वैरागी, तुम्हारे कपालमें दुःख है।

धनंजय—जो दुःख कपालमें था उसे हमने छातीपर बिठा लिया है और दुःखोंके ऊपर रहनेवाला उसी स्थान पर निवास करता है।

रणजित्—(प्रजाके प्रति)—हम तुम लोगोंको आज्ञा देते हैं कि तुम शिवतराईको लौट जाओ और वैरागी, तुम यहीं रहो।

सब—जब तक हम लोगोंके शरीरमें प्राण हैं, तब तक यह नहीं हो सकता।

धनंजय—(गाता है-)

'रह' कहकर किसको रक्खोगे?
आज्ञा कब होगी स्वीकार?
रहनेवालेको होगी क्या—
खींचातानीकी दरकार?

राजासाहब, आप खींचकर कुछ भी नहीं रख सकेंगे। जब आपमें रखनेकी सहज शक्ति होगी तभी यह रखना बन सकेगा।

रणजित्—इसका मतलब क्या हुआ?

धनंजय—जो सब कुछ देता है वही सब कुछ रख सकता है। जिसे लोभ करके रखना चाहोगे वह होगा चोरीका माल; और चोरीका माल हजम नहीं हो सकता।

जो चाहो कर डालो, दैहिक बलसे कर दो मार।
होगा जिनके हृदय-बीच उस पीडाका संचार—
वे ही असहनीय सह लेंगे,
सुन्दर सहनशीलता धार॥

राजा, तुम यह सोचनेमें भूल कर रहे हो कि जगतको छीन लेनेसे ही, जगत् तुम्हारा हो गया। वास्तवमें वह मुक्त कर देनेसे ही पाया जाता

है। यदि तुम उसे अपनी मुट्ठीमें दबा कर रखना चाहोगे तो देखोगे कि वह तुम्हारे हाथसे निकल गया है।

यही सोचते हो, होंगे सब मनचाहे व्यवहार।
जैसा नाच नाचाओगे तुम, नाचेगा संसार!
सहसा आँख खोल देखोगे—
अघटित घटनाका व्यापार!

रणजित्—मंत्री, वैरागीको पकड़ लो!

मंत्री—महाराज—(चुप हो जाता है।)

रणजित्—क्या यह मेरी आज्ञा तुम्हें पसन्द नहीं है?

मंत्री—शासनका भीषण यंत्र तो तैयार हो गया है, उसके ऊपर यदि आप भय और चढ़ाने जायँगे तो वह सब टूट फूट कर नष्ट हो जायगा।

प्रजाजन—यह हमसे नहीं सहा जायगा।

धनंजय—(प्रजासे) मैं कहता हूँ कि तुम जाओ, लौट जाओ!

प्रथम शिवरातराईका ना०—बाबाजी, क्या आपने नहीं सुना कि हम युवराजको भी खो चुके हैं?

द्वितीय ना०—ऐसी दशामें किसके द्वारा हमारे मनको जोर मिलेगा?

धनंजय—मेर जोरसे ही क्या तुम लोगोंमें जोर है? यदि ऐसा कहोगे तो तुम मुझे बिल्कुल कमजोर बना दोगे।

गणेश—यह बात कह कर छलना मत कीजिए। हम सब लोगोंका जोर एक आपके ही आश्रित है। आपके ही जोरसे हम जोर-दार हैं।

धनंजय—तब तो मेरी हार हुई समझो। लो, अब मुझे इससे अलग हट जाना पड़ा।

सब लोग—क्यों बाबाजी?

धनंजय—मुझे पाकर अपने आपको खो दोगे? और क्या मुझमें इतनी शक्ति है कि तुम्हारी इतनी बड़ी हानिकी मिटा सकूँ? मुझे इससे बड़ी लज्जा हुई।

पहला ना०—बाबाजी, यह आप क्या कहते हैं? अच्छा, अब आप जो कहेंगे हम वही करेंगे!

धनंजय—तो मुझे छोड़कर चले जाओ।

दूसरा ना०—चले जाकर क्या करेंगे? आप हम लोगोंको छोड़कर रह सकेंगे? हम लोगोंपर आपका प्रेम नहीं है?

धनंजय—इसकी अपेक्षा कि तुम्हें प्रेम किया जाय और उससे तुम्हारा गला घोट दिया जाय यह कहीं अधिक अच्छा है कि तुम्हारे साथ प्रेम किया जाय और तुम्हें स्वाधीन बनाया जाय। जाओ, अब कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। चले जाओ।

द्वि०ना०—अच्छा, बाबाजी, हम लोग चले; किन्तु—

धनंजय—'किन्तु' नहीं, अपना सिर ऊँचा रक्खो और बिल्कुल 'निष्किन्तु' होकर जाओ!

सब—बहुत अच्छा, तो हम जाते हैं।

(धीरे धीरे जाते हैं।)

धनंजय—क्या इसीका नाम जाना है? जल्दी जाओ! जल्दी!

गणेश—जाते हैं, किन्तु हमारी सारी शक्ति और बुद्धि रह जायगी, यहीं पड़ी हुई। (जाते हैं।)

रणजित्—वैरागी, क्या सोचने लगे? चुप क्यों हो रहे हो?

धनंजय—राजन्, उन लोगोंने मुझे चिन्तित कर दिया है।

रणजित्—किस लिए?

धनंजय— तुम अपने चण्डपालके डण्डेसे भी जो नहीं करा सके थे, देखता हूँ कि मैं वही कर बैठा हूँ। इतने दिनोंसे समझ रक्खा था कि मैं उन लोगोंकी शक्ति और बुद्धि बढ़ा रहा हूँ; पर आज वे मेरे ही मुँहपर कह गये कि मैंने ही उनकी शक्ति बुद्धि छीन ली है।

रणजित्—तुम ऐसा क्यों सोचते हे?

धनंजय—मैं समझा था कि मैंने उनके विश्वासों और आशा-ओंको परिपुष्ट किया है; पर आज उन्होंने कठोरतापूर्वक मेरे देखते हुए सिद्ध कर दिया है कि स्वतः मैं ही उनकी आशा और विश्वासके लुट जानेका कारण हूँ।

रणजित्—भला ऐसा हुआ क्यों?

धनंजय—मैंने जितना ही उन्हें उत्तेजित किया उनकी बुद्धिको उतना ही कम परिपक्क होने दिया। जिन मनुष्यों पर कर्ज बहुत हो गया है, उन्हें केवल दौड़ा देनेसे तो वह कर्ज अदा हो न जायगा! वे मुझे विधातासे भी बड़ा समझते हैं और सोचते हैं कि मैं उन्हें उस ऋणसे मुक्त कर सकता हूँ जो उन्हें ईश्वरको चुकाना है और इस लिए वे अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं और अपनी सारी शक्तिसे मेरे साथ चिपटे हुए हैं।

रणजित्—उन्होंने तुम्हें अपना ईश्वर समझ लिया है।

धनंजय—और इसी लिए वे मुझ तक ही आकर रुक जाता हैं, अपने सच्चे ईश्वर तक नहीं पहुँच सकते। वह प्रभु—जो उन्हें अन्दरसे

मार्ग दिखा कर चला सकता—मेरे द्वारा रोंक दिया गये हैं।मै उन्हा केवल बाह्य शक्तिसे प्रेरित करता हूँ।

रणजित्—जब वे राजाका कर देनेके लिए आते हैं, तब तो तुम उन्हें रोक देते हो; परन्तु जब वे ईश्वरकी भेट तुम्हारे पैरों पर चढ़ा देते हैं तब तुम्हें बुरा नहीं माळूम होता

धनंजय—उस समय मुझे सचमुच बहुत ही दुःख होता है। मनमें आता है कि पृथ्वीमें समा जाऊँ! वे अपनी सारी पूजा मुझपर ही समाप्त कर देते हैं और उनका मन एक प्रकारसे दिवालिया बन जाता है। उनके इस ऋणका उत्तरदायित्व मुझ पर ही पड़ेगा, मैं उससे बच नहीं सकता।

रणजित्—तो अब तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है?

धनंजय—उनसे अलग रहना और यदि यह सत्य है कि मैंने उनकी मानसिक स्वतन्त्रतामें एक बाँध डाल दिया है तो मुझे डर है कि भगवान् भैरव मुझे और तुम्हारे विभूतिको एक साथ ही दण्ड देंगे।

रणजित्—तो फिर देर क्या है? क्यों नहीं अलग हो जाते?

धनंजय—मेरे अलग होते ही वे एकदम तुम्हारे चण्डपालकी गर्दन-पर जाकर चढ़ बैठेंगे और तब जो दण्ड मुझे मिलना चाहिए वह पड़ेगा उसकी खोपड़ीपर। अतएव मैं अलग नहीं हो सकता।

रणजित्—यदि तुम स्वयं अलग नहीं हो सकते तो हम ही अलग किये देते हैं। अच्छा उद्धव, वैरागीको इसी समय शिविरमें कैद कर दो।

धनंजय—(गाता है—)

हमें तुम्हारी साँकलका भय, व्याकुल नहीं करेगा।
मर्म तुम्हारी किसी मारके मारे नहीं मरेगा॥

मुक्तिपत्र उनके हाथोंका, लिखा हुआ वह खास।
रहता है मनमध्य हमारे, यही, प्राणके पास॥
नहीं तुम्हारा कोई बन्धन, हमको बाँध धरेगा॥
जिस पथसे हम आते जाते उसका पता निशान।
कहो, तुम्हारे प्रहरी क्या कुछ कभी सकेंगे जान?
पहुँच गये हम उनके द्वारे।
टोक सकेगा भला कौन फिर हमको द्वार तुम्हारे?
नहीं डरेगा प्राण, तुम्हारे डरसे, नहीं डरेगा॥

(धनंजयको लेकर उद्धव जाता है।)

रणजित्—मंत्री, अभिजित्को बन्दीगृहमें जाकर देख आओ, यदि वह अपने किये हुए कार्यके लिए अनुतप्त हो तो—

मंत्री—महाराज, यह उचित नहीं है। आपको स्वयं ही जाकर—

रणजित्—नहीं नहीं, उसने अपने देशवासियोंके प्रति, राज्यके प्रति विश्वासघात किया है। जब तक कि वह अपना अपराध स्वीकार न करे मैं उसका मुँह भी न देखूँगा। मैं राजधानीको वापिस जाता हूँ, वहाँ मुझे समाचार भेजना। (प्रस्थान।)

[पुजारियोंका प्रवेश।]

गीत—

तिमिर-हृद्विदारण,
ज्वलदग्नि-निदारुण,
मरु-श्मसान-संचर!
शंकर, शंकर!
वज्रघोषवाणी,
रुद्रशूलपाणी,
मृत्युसिन्धु-संतर,
शंकर, शंकर!

उद्धव—यह क्या बात है ? राजा युवराजको बिना देखे ही चले गये ?

मन्त्री—उन्हें डर था कि कहीं वे अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित न हो जावें। वे वैरागीसे इतनी देरतक अपने मनमें इसी द्विविधाको लिये ही बातचीत करते थे। वे शिविरके भीतर भी न जा सकते थे और शिविरको छोड़कर जानेके लिए भी उनके पैर न उठते थे। अब चलूँ, युवराजको देख आऊँ। (जाते हैं।)

[दो स्त्रियोंका प्रवेश।]

पहली—क्यों मौसी, वे सबके सब इस तरह क्यों क्रोधित हो रहे हैं ? क्यों कहते हैं कि युवराजने अन्याय किया है ? यह न तो मेरी समझमें ही आता है और न मैं इसे सह ही सकती हूँ।

दूसरी—उत्तरकूटकी लड़की होकर भी तेरी समझमें नहीं आता है ? उन्होंने नन्दी घाटीका रास्ता खोल दिया है।

पहली—यदि मैं नहीं जानती हूँ तो इसमें अपराध क्या हुआ ? पर इस बात पर तो मुझे किसी भी तरह विश्वास नहीं होता कि युवराजने बुरा किया है।

दूसरी—तू अभी लड़की है; बहुत दुःख पा चुकेगी तब एक दिन समझेगी कि जो बाहरसे बहुत अच्छा मालूम होता है उसीपर ज्यादा सन्देह किया जाता है।

पहली—परन्तु युवराज पर तुम्हें क्या सन्देह है ?

दूसरी—सभी लोग कहते हैं कि शिवतराईके लोगोंको वशमें करके अब वे उत्तरकूटके सिंहासनको जीतना चाहते हैं—और यह उन्हें सह्य नहीं है।

पहली—उन्हें भला सिंहासनकी क्या जरूरत है ! उन्होंने तो सबके ही हृदय जीत लिये हैं। जो लोग निन्दा करते हैं उनका तो विश्वास किया जाय और स्वयं युवराजका नहीं ?

दूसरी—चुप रह। कलकी छोकरी, तेरे मुँहसे ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। सारे देशके लोग जिसे बुरा कहते हैं, तू एकाएक उसकी—

पहली—मैं सारे देशके लोगोंके सामने खड़े होकर यह बात कह सकती हूँ कि—

दूसरी—चुप, चुप रह।

पहली—चुप क्यों रहूँ ? मेरी आँखें फटकर उनमेंसे जल बाहर निकलना चाहता है। इस बातको प्रकाशित करनेके लिए कि मैं युवराज पर सबसे अधिक विश्वास करती हूँ मुझसे जो कुछ बन सकता है कर डालनेकी इच्छा होती है। आज मैं भैरवके निकट अपने इन लम्बे बालोंको चढ़ानेकी मानता मानूँगी—कहूँगी—"बाबा, तुम बतला दो कि युवराजकी ही जीत है और जो निन्दक हैं वे सब झूठे हैं !"

दूसरी—अरी, चुप चुप। कहींसे कोई सुन लेगा। देखती हूँ, यह छोकरी किसी विपत्तिमें फँसाये बिना न रहेगी !

(दोनों जाती हैं।)

[उत्तरकूटके नागरिकोंका प्रवेश।]

प्र० नागरिक—हमें अपनी बात पर दृढ़ रहना चाहिए। चलो, राजाके पास चलें।

द्वि० ना०—इससे क्या लाभ ? युवराज राजाके हृदयका हार है।

वे उसके अपराधका न्याय नहीं कर सकेंगे; उलटे हम लोगों पर ही नाराज होंगे।

प्र० नागरिक—इसकी कोई परवाह नहीं। हमें जो कुछ कहना है साफ साफ कहेंगे, फल कुछ भी हो।

तृ० ना०—इधर तो युवराजने हम लोगोंपर इतना प्रेम दिखलाया, ऐसी आशायें दिलाईं कि आकाशका चाँद ही हमारे लिए ला देंगे और उधर भीतर ही भीतर उनकी यह कीर्ति देखनेको मिली! एकाएक उनके निकट शिवतराई उत्तरकूटसे भी बड़ी हो उठी!

द्वि० ना०—यदि यह भी हो सकता है तो फिर संसारमें धर्म रहा ही कहाँ? तुम्हीं कहो भैया!

तृ० ना०—किसी मनुष्य पर उसकी बाह्य आकृतिसे ही विश्वास न कर लेना चाहिए।

प्रथम नागरिक—यदि राजा उसे दण्ड न देगा, तो हम लोग देंगे।

द्वि० नागरिक—क्या करोगे?

प्र० ना०—उसे यहाँ जगह नहीं मिल सकती। उसे उसी रास्तेसे निकल जाना चाहिए जो उसने नन्दी घाटी पर खोला है!

तृ० ना०—परंतु अभी उस चौबुआ गाँवके आदमीने कहा है कि वह इस समय शिवतराईमें नहीं है और न राजमहलमें ही उसका कोई पता है।

प्र० ना०—तब तो निश्चय उसे राजाने कहीं छुपा दिया है।

तृ० ना०—छिपा दिया है? हम दीवालोंको तोड़ डालेंगे और उसे बाहर निकाल लावेंगे।

प्र० नागरिक—हम राजमहलमें आग लगा देंगे।

[मन्त्री और उद्धवका प्रवेश ।]

प्र० नागरिक–(मन्त्रीसे) तुम हमसे लुका–चोरीका खेल तो नहीं खेलना चाहते ? राजकुमारको बाहर लाओ।

मन्त्री—अरे भैया, म उसे बाहर लानेवाला कौन हूँ ?

द्वि० ना०—यह तुम्हारी ही सम्मतिसे हुआ होगा; परन्तु हम कहे देते हैं कि यह नहीं हो सकता। हम उसे खींचकर बाहर निकाल लावेंगे।

मन्त्री—तो इस राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले लो और उसे राजाके कारागारमेंसे निकाल लाओ।

तृ० ना०—राजाके कारागारमेंसे ?

मन्त्री—हाँ, राजाने ही उन्हें कैद कर रक्खा हैं।

सब—महाराजकी जय, उत्तरकूटकी जय !

दू० नागरिक—चलो, हम लोग कारागार चलें और वहाँ–

मन्त्री—वहाँ जाकर क्या करोगे ?

दू० ना०—हम विभूतिकी फेंकी हुई मालाके फूल निकाल कर उसके तागेको युवराजके गलेमें डाल आवेंगे।

ती० ना०—गलेमें क्यों, हाथमें। बाँध बाँधनेके सम्मानका जो उच्छिष्ट (जूँठन) है, उसीकी रस्सी मार्ग खोल देनेवालेके हाथमें पड़ेगी।

मन्त्री—तुम कहते हो कि युवराज अपराधी है, क्यों कि उसने मार्ग खाल दिया है; परन्तु क्या इसमें अपराध नहीं है कि तुम राज्यके कानूनोंको तोड़ना चाहते हो ?

दू० ना०—नहीं, यह बिल्कुल दूसरी बात है।

ती०ना०—पर यदि हम कानून तोड़ें ही तो—

मंत्री—यह तो पैरों तलेकी भूमि पसन्द न आनेके कारण शून्यमें कूद पड़ना हुआ। परन्तु मैं कहे रखता हूँ कि तुम्हें वह भी पसन्द न आयगा। किसी व्यवस्थाको तब तोड़ना चाहिए जब उसके स्थानमें कोई नई व्यवस्था खड़ी कर ली गई हो।

ती० ना०—अच्छा तो जेलखाने नहीं जायँगे। राजमहलको जायँगे और उसके सामने खड़े होकर महाराजका 'जय–जयकार' करेंगे।

प्र० ना०—उधर देखो! सूर्यास्त हो गया है, आकाशमें अंधेरा होता जाता है; परन्तु विभूतिके यन्त्रकी चोटी अब भी चमक रही है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों वह धूपकी शराब पी पीकर नशे-से लाल हो रहा है।

दू० ना—और अस्त होते हुए सूर्यके प्रकाशने मानों डूब जानेके भयसे भैरव-मंदिरके त्रिशूलको पकड़ रक्खा है। देखो, कैसा दिखलाई देता है! (उत्तरकूटके नागरिक चले जाते हैं।)

मन्त्री—अब मैं समझा कि राजाने युवराजको क्यों अपने शिविरमें बन्दी किया है।

उद्धव—क्यों किया है?

मन्त्री—युवराजको लोगोंके हाथोंसे बचानेके लिए। परन्तु अवस्था बिगड़ती जाती है। उत्तेजना प्रतिक्षण भयानक रूप धारण कर रही है।

[संजयका प्रवेश ।]

संजय—मैंने महाराजसे अधिक आग्रह करनेका साहस नहीं किया, क्यों कि ऐसा करनेसे उनका संकल्प और भी दृढ़ हो जाता ।

मन्त्री—राजकुमार, आप शान्त रहिए । पेचीदगियोंको अधिक न बढ़ाइए । वे पहले ही बहुत हैं ।

संजय—विद्रोह खड़ा करके मैं भी कैद होना चाहता हूँ ।

मन्त्री—इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा होगा कि आप मुक्त रहकर बन्धन तोड़नेका प्रयत्न करें ।

संजय—मैं इसी मतलबसे ही प्रजाके निकट गया था । मैं सोचता था कि लोग युवराजको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं और वे उनका बन्दी होना सहन न कर सकेंगे । परन्तु मैंने जाकर देखा कि ज्यों ही उन्हें नन्दी घाटीके खुल जानेके समाचार मिले त्यों ही वे क्रोधके मारे आगबबूला हो गये हैं ।

मन्त्री—तब आप समझ सकते हैं कि युवराजकी रक्षा बंदी होकर रहनेमें ही है ।

संजय—मैं सदैव बचपनसे ही उनका अनुगामी रहा हूँ, अतएव अब जेलमें भी उनके साथ ही रहूँगा ।

मन्त्री—इससे क्या लाभ होगा ?

संजय—प्रत्येक मनुष्य अपनेमें आधा है । उसकी पूर्णता तब होती है जब कि वह किसी दूसरेसे मिलता है । मैं देखता हूँ कि मेरी पूर्णता युवराजके साथ मिल जानेमें है ।

मन्त्री—परन्तु जहाँ यथार्थ एकता है वहाँ बाह्य मिलन व्यर्थ है । आकाशके मेघ और समुद्रका पानी परस्पर इतने दूर होनेपर भी

भीतरसे एक हैं। हमारे युवराजका प्रकाश—आज जहाँ वे नहीं हैं वहीं-तुम्हारे द्वारा हो।

संजय—मंत्रीजी, ये शब्द आपके अपने नहीं माळूम पड़ते। ये तो युवराजके जैसे लगते हैं।

मंत्री—हाँ, उनके शब्द इस जगहके वायुमण्डलमें भरे हुए हैं। हम उपयोग उन्हींका करते हैं; किन्तु यह भूल जाते हैं कि ये शब्द उनके हैं।

संजय—आपने मुझे यह स्मरण दिला कर बड़ा उपकार किया। मैं उनसे अलग रहते हुए ही उनकी सेवा करूँगा। अब मैं महाराजके पास जाता हूँ।

मन्त्री—क्यों?

संजय—मैं उनसे कहूँगा कि मुझे शिवतराईका शासन-भार सौंप दीजिए।

मंत्री—परन्तु समय बड़ा टेढ़ा है।

संजय—और इस लिए यही सबसे उत्तम अवसर है।

(प्रस्थान।)

[राजाके चाचा विश्वजित्का प्रवेश।]

विश्वजित्—कौन है? क्या उद्धव है?

उद्धव—हाँ, महाराज!

विश्वजित्—मैं अँधेरा होनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। क्या तुम्हें मेरा पत्र मिल गया?

उद्धव—हाँ।

वि० जि०—क्या तुमने मेरी बात मानी ?

उद्धव—आपको थोड़े ही समयमें पता लग जायगा परन्तु—

विश्वजित्—अपने मनमें सन्देह न करो। महाराज उसे स्वयं छोड़नेको तयार नहीं हैं। परन्तु यदि कोई दूसरा मनुष्य बिना महाराजको बताये, किसी उपायसे, उसे स्वतन्त्र कर देगा, तो इस संकटसे वे बच जावेंगे—उनकी रक्षा हो जायगी।

उद्धव—परन्तु वे उस आदमीको क्षमा न करेंगे जो यह कार्य करेगा।

विश्वजित्—मेर सिपाही तुम्हें और तुम्हारे रक्षकोंको कैद करके ले जावेंगे। उत्तरदायित्व मेरा होगा।

नेपथ्यमें—आग, आग।

उद्धव—यह लो, हो गया। उन्होंने रसोईके शिविरमें, जो कैदखानेके समीप है, आग लगा दी। यही मेरे लिए अवसर है कि मैं धनंजय और युवराजको मुक्त कर दूँ।

[बाहर जाता है और कुछ ही देर पीछे युवराज अन्दर आते हैं।]

अभिजित्—(विश्वजित्से) दादाजी ! आप यहाँ कैसे आये ?

विश्वजित्—मैं तुम्हें कैद करनेके लिए आया हूँ, मोहनगढ़ चलना होगा।

अभिजित्—आज मुझे कोई कैद नहीं कर सकता—न क्रोध, न प्रेम। आप लोग क्या यह सोचते हैं कि मैंने इस शिविरमें आग लगवाई है ? नहीं, यह आग मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। यह तो किसी न किसी तरह लगतो ही। अब मुझे कैदी बनकर रहनेके लिए अवकाश नहीं है।

विश्वजित्—क्यों बेटा ? इस समय तुम्हें क्या काम है ?

अभिजित्—मुझे अपने जन्म कालका ऋण चुकाना है। झरनेका प्रवाह मेरी धात्री (धाय) है, मैं उसका बन्धन तोड़ूँगा—उसे स्वतन्त्र करूँगा।

विश्वजित्—उसके लिए बहुत समय है, आज नहीं।

अभिजित्—मैं यह बात तो जानता हूँ कि समय अभी ही आया है; परन्तु यह कोई नहीं जानता कि वह फिर भी आयगा या नहीं।

विश्वजित्—हम लोग भी तुम्हारा साथ देंगे।

अभिजित्—नहीं, यह मेरे ही हृदयकी पुकार है जो आपलोगों तक कभी नहीं पहुँची है।

विश्वजित्—शिवतराईके लोग—जो तुम्हें प्यार करते हैं—बड़ी उत्सुकतासे तुम्हारे काममें हाथ बँटानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या तुम उन्हें नहीं पुकारोगे ?

अभिजित्—यदि यह पुकार उन तक भी पहुँची होती तो वे मेरी प्रतीक्षा कभी न करते। मेरी पुकार उन्हें केवल उल्टे रास्ते ले जायगी।

विश्वजित्— बेटा, अब तो अँधेरा हो आया है।

अभिजित्—जहाँसे पुकार हुई है उस ओरसे प्रकाश भी आवेगा।

विश्वजित्—मैं तुमको तुम्हारे मार्गसे हटानेकी शक्ति नहीं रखता, यद्यपि तुम अंधकारमें कूद रहे हो। मैं ईश्वर पर विश्वास रखता हूँ कि वह तुम्हारा मार्गदर्शक होगा। मैं तुम्हें उसी प्रभुके हाथोंमें सौंपता हूँ। केवल एक आश्वासन-वाक्य सुनकर जाना चाहता हूँ। मुझसे कहो कि हम फिर भी मिलेंगे।

अभिजित्—अपने मनमें निश्चय रखिए कि हम अलग नहीं हो सकते। (दोनों भिन्न भिन्न दिशाओंको जाते हैं।)

[धनंजयका प्रवेश।]

धनंजय—(गाता है—)

हमारे भैया अगिन, उदार।
करें हम तुम्हरो जयजयकार।
ऐसी छिन्न सृंखला वारी, मूरति लोहित लोल तिहारी,
कब हूँ नैनन नाहिं निहारी, कितनी भीम, कितो बिसतार!
निज कर नभकी ओर पसारे, काके गान भये मतवारे,
निरतत अति आनँद उर धारे, इतनी निर्भयता, बलिहार!
ह्वै है भवकी अवधि समापत, खुलि हैं अर्गल-द्वार,
जादिन हातन-पाँयनके दृढ़ बंधन करि हैं छार।
तादिन हमरे अंग नाचि हैं यही नाच तुव संग,
सारी दाह दाहसों मिटि है, खूब मचैगो रंग—
पाय हैं सब विपदनितें पार॥

[वटुका प्रवेश।]

वटु—बाबाजी, दिन समाप्त हो गया और अँधेरा होता जाता है।

धनंजय—बच्चो, हम लोगोंने बाह्य प्रकाश पर निर्भर रहनेकी आदत डाल ली है और इसी लिए अन्धकार होते ही हम बिल्कुल अन्धे हो जाते हैं।

वटु—मैंने सोचा था कि भगवान् भैरवका नृत्य आज ही प्रारंभ होगा; पर क्या यन्त्रराज विभूतिने भगवानके भी हाथ पैर अपने यन्त्रसे बाँध दिये ?

धनंजय—भैरवका नृत्य जब प्रारम्भ होता है तब तो नहीं दिखता; परन्तु जब उसके समाप्त होनेकी बारी आती है तब प्रकाशित हो पड़ता है।

वटु—प्रभो! हमें आशा और विश्वास दीजिए। हम लोग भयभीत हैं। जागो, भैरव भगवान्, जागो! प्रकाश बुझ गया है, मार्गमें अन्धकार है और हमें कोई प्रत्युत्तर सुनाई नहीं देता। हे मृत्युंजय, हमारे भयको भय दिखाकर भगा दो! भैरव जागो, जागो!

[प्रस्थान।]

[उत्तरकूटके नागरिकोंका प्रवेश।]

प्र० ना०—यह बात झूठ है। वह राजधानीके कारागारमें नहीं है, उन्होंने उसे कहीं छिपा रक्खा है।

दू० ना०—हम देखेंगे वे उसे कैसे छिपाये रखते हैं!

धनंजय—नहीं, वे उसे कहीं भी छिपा कर नहीं रख सकते। दीवालें गिर जायगी, फाटक टूट जायँगे, अन्धेरे कोनोंमें प्रकाश घुस आयेगा और प्रत्येक बात प्रकाशित हो पड़ेगी।

प्र० ना०—अरे यह और कौन है? इसने एकाएक छातीके भीतर-वालेको चौंका दिया।

ती० ना०—यह ठीक हुआ। हमें तो कोई शिकार चाहिए। यह वैरागी बिल्कुल ठीक रहेगा। इसे बाँध लो।

धनंजय—जो मनुष्य अपनेको पकड़ा देकर ही बैठा है उसे भला कैसे पकड़ोगे?

प्र० ना०—अलग रक्खो अपने सन्तपनको, हम यह सब नहीं मानते।

धनंजय—न मानना ही तो अच्छा है। प्रभु स्वयं हाथ पकड़कर तुमसे मनवा लेंगे। तुम लोग भाग्यवान् हो। मैं जिन बहुतसे अभागों-को जानता हूँ उन्होंने अपने गुरुको केवल मान मानकर ही खो दिया है।

उन लोगोंने मुझे इस ' मानने ' की मारसे ही देश छोड़नेको मजबूर किया है।

प्र० ना०—उन लोगोंका गुरु कौन है ?

धनंजय—जिसके हाथसे वे मार खाते हैं।

प्र० ना०—तब तो फिर हम लोगोंको भी तुम पर ' गुरु-गीरी ' शुरू कर देनी चाहिए !

धनंजय—मैं इसके लिए राजी हूँ। भैया ! मैं भी देख लूँ कि अच्छी तरह सबक सुना सकता हूँ या नहीं। परीक्षा लेना शुरू कर दो।

दू० ना०—सन्देह होता है कि तुम्हींने हमारे युवराजके सम्बन्धमें कुछ चालाकी की है।

धनंजय—तुम्हारे युवराज मुझसे भी ज्यादा चालाक हैं, उन्हींने मेरे सम्बन्धमें चालाकी की है !

द्वि० ना०—देखा न, इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। दोनोंने ही मिलकर कोई ' जाल ' रचा है।

प्र० ना०—ऐसा न होता तो यह इतनी रातको यहाँ क्यों घूमता फिरता ? युवराजको भगाकर शिवतराई ले जानेकी फिक्रमें है। अभी तो इसे यहीं बाँधकर रख जाना चाहिए। इसके बाद युवराजका पता लगने पर इससे निबट लिया जायगा। अरे ओ कुन्दन, इसे बाँध ले न। रस्सी तो तेरे पास ही है।

कुन्दन—तुम्हीं ले लो न यह रस्सी, तुम्हीं क्यों नहीं बाँध लेते ?

द्वि० ना०—अरे, तू उत्तरकूटका मनुष्य है ? दे, मुझे दे ! (बाँधते बाँधते) क्यों, अब गुरुजी क्या कहते हैं ?

धनंजय—अच्छी तरह कसकर बाँध लिया है? सहज ही तो नहीं छूट जाऊँगा?

[भैरव-पंथियोंका प्रवेश।]

गाते हैं—

तिमिर-हृदविदारण
ज्वलदग्नि-निदारुण!
मरुश्मशान-सञ्चर,
शंकर, शंकर!
वज्रघोषवाणी,
रुद्र, शूलपाणी,
मृत्यु-सिन्धु-सन्तर,
शंकर, शंकर!

(प्रस्थान।)

कुन्दन—उधर देखो! उसे देखो! ज्यों ज्यों गोधूलिका प्रकाश बुझता जाता है, सन्ध्याका अँधेरा होता जाता है, त्यों त्यों वह यन्त्र काला और काला पड़ता जाता है।

प्र० ना०—दिनमें इसने सूर्यके प्रकाशसे बढ़ जानेका यत्न किया और अब यह रात्रिके अन्धकारका मुकाबला कर रहा है। यह भूतके समान प्रतीत होता है।

दू० ना०—मैं नहीं समझता कि विभूतिने उसे इस प्रकारका क्यों बनाया है। हम उत्तरकूटमें कहीं भी हों उसकी ओर ताके बिना नहीं रह सकते। मानों यह आकाशको फाड़नेवाली एक विकट चीख ही है।

[चौथे नागरिकका प्रवेश।]

चौ० ना०—खबर मिली है कि इस आमके बगीचेके पीछे राजाका शिविर पड़ा है। युवराज उसीमें रक्खे गये हैं।

तीο नाο—इतनी देरके बाद समझमें आया कि वैरागी इसी रास्तेके आसपास क्यों घूमता फिरता था। अब इसे यहीं बँधा हुआ पड़ा रहने दो। तब तक चलो, हम देख आवें। (प्रस्थान।)

धनंजय—(गाता है—)

कहा तार बाँधेतें केवल है है पूरन काज तुम्हार,
गुन गरबीले, गुनी हमार !
बाँधी बीना हू प्रस्तुत यह धरी रहैगी याहि प्रकार।
गुन गरबीले, गुनी हमार !
तब तो है है हार तिहारी, है है, है है निश्चय हार।
केवल याकी बाँधा बाँधी है है तुव करतबको सार !
गुन गरबीले, गुनी हमार !
बंधन पै तुव कर जब लागै, तार तारमें सुर तब जागै,
उठै सुरीली पुनि झंकार।
गुन गरबीले, गुनी हमार !
नहिं तो धूरि फाँकि है बीना, लै है सिर लज्जाको भार !
गुन गरबीले, गुनी हमार !

[नागरिकोंका पुनः प्रवेश।]

प्रο नाο—अरे यह क्या बखेड़ा है ?

दूο नाο—हमारे महाराजके चाचा, युवराजको उनके रक्षकोंके सहित मोहनगढ़ ले गये ! भला इसका मतलब क्या हुआ ?

कुन्दन—मतलब यह हुआ कि उनकी नाड़ियोंमें उत्तरकूटका रक्त बहता है। उन्होंने ऐसा इसी कारण किया होगा कि युवराज कहीं राजासे उचित दण्ड पाये बिना न रह जाय।

प्रο नाο—यह बड़ा भारी अन्याय है, अत्याचार है। जरा सोचो,

तो, यह हमारे अधिकार पर आक्रमण है। हम अपने युवराजको अपने आप ही दण्ड दे लेते।

दू० ना०—इसका सबसे अच्छा उपाय तो इतना ही है कि—समझे न, बड़े भैया—

प्र० ना०—हाँ हाँ, वह स्वर्णकी खान जो उनके राज्यमें है—

कुन्दन—और मैंने बहुत ही विश्वस्त सूत्रसे सुना है कि कमसे कम पचीस हजार पशु उनकी पशुशालामें हैं।

प्र०ना०—वे सब हमें गिन गिन करके ले लेना चाहिए तब—बड़ा अन्याय है!—बिल्कुल असह्य है!

तृ० ना०—और इसके सिवाय उनके केशरके खेतोंकी वार्षिक आय कमसे कम—

दू० ना०—हाँ, हाँ, वह उनसे दण्ड स्वरूप ले लेना चाहिए। किन्तु यह तो बतलाओ कि अब इस वैरागीका क्या किया जाय?

प्र० ना०—इसको यहीं पड़ा रहने दो। (प्रस्थान।)

धनंजय—(गाता है—)

दूर फेंक देनेहीसे क्या पडा रहेगा?
जानकार लेनेको प्रस्तुत खडा रहेगा।
सोच देख, वह कौन रत्न है, कैसा भारी;
होगा क्या निर्बोध, धूलका वह अधिकारी?
उसका खोजाना क्या एक अनर्थ न होगा?
क्या उनका वह हार गूँथना व्यर्थ न होगा?
ज्ञात नहीं क्या, खोज हुई है उसकी अब तो;
यत्र तत्र, सर्वत्र विचरते हैं चर तब तो!
जिसका सबने एक साथ अपमान किया है,
आदर उसका अधिक और भी बढ़ा दिया है!

दर्द दिया जिसको उसकी पीडाको ऐसे,
उस दर्दीके प्राण कहो, सह लेंगे कैसे?

[कुन्दनका पुनः प्रवेश।]

कुन्दन—बाबाजी, मैं आपका बंधन खोल देता हूँ—अपराध क्षमा करना। आप इसी समय अपने घर भाग जावें। क्या जाने आज रातको—

धनंजय—क्या जाने, यदि कहीं आज रातको ही मेरी पुकार हो; तब घरको कैसे भागा जाय?

कुन्दन—यहाँ तुम्हारी पुकार कहाँसे होगी?

धनंजय—उत्सवके अन्तमें शायद हो।

कुन्दन—आप शिवतराईके मनुष्य होकर उत्तरकूटके—

धनंजय—भैरवके उत्सवमें अब केवल शिवतराईकी आरती होना ही बाकी है।

नेपथ्यमें—जागो, भैरव, जागो!

कुन्दन—मुझे अच्छा नहीं माळूम होता, जाता हूँ।

(दोनों जाते हैं।)

[उत्तरकूटके दो राजदूतोंका प्रवेश।]

प्रथम रा०—अब किस ओर जाऊँ? नवसानुमें बकरियाँ चरानेवालोंने कहा कि "हम लोगोंने युवराजको इसी रास्तेसे पश्चिमकी ओर अकेले जाते हुए देखा है।"

दू०—चाहे जिस तरह हो, आज रातको उनका पता लगाना ही होगा–महाराजका यही हुक्म है।

प्र०—खबर उड़ी है कि उन्हें मोहनगढ़ ले गये हैं, परन्तु उस

पगली अम्बाकी बातोंसे तो साफ साफ माल्रूम होता है कि उसने जिसे देखा है वे हमारे युवराज ही हैं और वे इसी रास्ते आये हैं।

दू०—परन्तु ऐसे अन्धकारमें वे अकेले कहाँ जावेंगे, कुछ समझमें नहीं आता।

प्र०—रोशनीके बिना हम लोग तो एक पैर भी न चल सकेंगे। चलो, कोटवालके पाससे रोशनीका इन्तजाम कर लावें।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[एक पथिकका प्रवेश।]

प्र० पथिक—(चिल्लाकर) बुद्धन्! शम्भू! बुद्धन! ओ! शम्भू—ऊ! बड़ी आफतमें फँसा दिया। मुझे पहिले ही भेज दिया और कहा कि पगडंडीसे आकर पकड़ लेंगे, परन्तु यहाँ उनका कोई चिह्न तक नहीं। (ऊपरको देखकर) अंधेरेमें वह लोहेका काला यन्त्र कुछ इशारा सा कर रहा है! वह मुझे चिढ़ा रहा है! बड़ा डर लगता है। अरे वह कौन आया? कौन हो जी तुम? तुम उत्तर क्यों नहीं देते? क्या बुद्धन् हो?

दू० पथिक—मैं दीपक बेचनेवाला निमकू हूँ। आज राजधानीमें सारी रात रोशनी होगी और इसके लिए दीपोंकी आवश्यकता होगी। तुम कौन हो?

प्र० पथिक—मैं हूँ हुब्बा, घूमनेवाली नाटक-मण्डलीमें गाया करता हूँ। क्या तुम्हें मार्गमें मेरी मण्डली और उसका नेता अन्दू मिला था?

निमकू—मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़ उस ओरसे आ रही थी। उसमेंसे भला मैं तुम्हारी मण्डलीको कैसे पहचान सकता था?

हुब्बा—परन्तु हमारा अन्दू ऐसा नहीं है कि उसको बहुतसे आदमियोंमेंसे अलग न कर सको। उसको पहिचाननेके लिए तुम्हें चश्मा

लगानेकी जरूरत नहीं थी। वह बिल्कुल जुदा आदमी है। हाँ भैया, तुम्हारी इस टोकरीमें कितने दीप हैं? क्या इनमेंसे एक मुझे नहीं दे सकते? जो लोग घरके अन्दर रहते हैं उनकी अपेक्षा बाहर घूमनेवालोंको दीपकी अधिक आवश्यकता है।

निमकू—तुम इसका कितना मूल्य देनेको तैयार हो?

हुब्बा—यदि मेरे पास कुछ देनेको ही होता, तो मैं जोरसे न माँगता? अपने मधुर स्वरको क्यों खर्च करता?

निमकू—तुम तो बड़े हँसोड़ मालूम पड़ते हो। (प्रस्थान।)

हुब्बा—दीप तो नहीं दिया, पर हँसोड़का पद दे गया। यह भी क्या कुछ कम है? उसने खूब पहिचाना। 'हँसोड़'में यह खूबी होती है कि वह गहरे अँधेरेमें भी पहिचान लिया जात है। ऊः, झींगुरोंकी झनकारसे आकाशका शरीर झिमझिम कर रहा है। मैं सोचता हूँ कि मैं उस दीप बेचनवाले पर अपने हास्यरसका प्रयोग न करके यदि अपनी शारीरिक शक्तिका प्रयोग करता तो फायदेमें रहता!

[और एक पथिकका प्रवेश।]

पथिक—अबे ओ!

हुब्बा—अरे बाबा, पृथ्वीपर चलो! मुझे डराते क्यों हो?

पथिक—अभी चलो!

हुब्बा—चलनेके लिए ही तो घरसे निकला हूँ और मन ही मन स तत्त्वको हजम करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ कि दलके लोगोंको छोड़कर चल पड़नेसे किस तरह अचल हो जाना पड़ता है।

पथिक—दलके लोग तैयार हैं, अब केवल तुम्हारी ही कमी है।

हुब्बा—तुम क्या कहते हो ? हम लोग तीन मुहानेके रहनेवाले शब्दोंको समझनेमें—जब कि उनका अर्थ स्पष्ट न हो—बहुत ही अयोग्य हैं । दलके लोगोंसे तुम्हारा क्या मतलब है ?

पथिक—हम चौबुआ गाँवके रहनेवाले अपना अथ शब्दोंकी अपेक्षा दूसरे उपायोंसे समझानेमें अत्यन्त चतुर हैं । (एक ठोकर लगाकर) समझे ?

हुब्बा—आः ! समझ गया। इसका सीधा मतलब यह है कि मैं चाहूँ या नहीं, मुझे चलना ही पड़ेगा । परन्तु किस स्थानको ? कृपया इस बार अपना उत्तर जरा मुलायम करके देना। तुम्हारे आलापके पहले ही धक्केसे मेरी बुद्धि परिष्कृत हो गई है ।

पथिक—तुम्हें शिवतराई चलना होगा ।

हुब्बा—शिवतराईको ? और अमावास्याकी इस अन्धेरी रातमें ! वहाँ क्या करना होगा ?

पथिक—नन्दी घाटीके नष्ट हुए कोटको फिरसे बनाना होगा ।

हुब्बा—नष्ट हुए कोटको क्या तुम मुझसे बनवाओगे ? मेरे प्यारे मित्र, इसका कारण यही है कि तुम अँधेरेमें मेरा चेहरा अच्छी तरह नहीं देख सकते; अन्यथा तुम ऐसी सख्त बात कभी न कहते । मैं हूँ—

पथिक—तुम कोई भी होओ, पर तुम्हारे दो हाथ तो हैं !

हुब्बा—हैं, पर इनके होनेका कारण यह है कि इनका बिल्कुल न होना भी ठीक न था। नहीं तो--

पथिक—हाथोंके उपयोगका परिचय तुम्हारे मुँहसे नहीं मिल सकता। समय आने पर हम उसका पता लगा लेंगे। अब चलो ! खड़े हो जाओ !

[दूसरे पथिकका प्रवेश ।]

दू० प०—कंकर, लो यह एक और आदमी मिल गया।

कंकर—यह कौन है ?

पथिक—मैं कोई नहीं भैया, मेरा नाम लछमन है। मैं भैरवके मन्दिरमें घंटा बजाता हूँ।

कंकर—यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम्हारे हाथ जरूर मजबूत होंगे। चलो, शिवतराई।

लछमन—परन्तु घण्टा ?

कंकर—भैरव बाबा अपना घण्टा स्वयं बजालेंगे।

लछमन—कृपा कर मुझपर दया करो, मेरी स्त्री बीमार है।

कंकर—तुम्हारी अनुपस्थितिमें वह या तो अच्छी हो जायगी या मर जायगी, और तुम्हारी उपस्थितिमें भी यही हो सकता है।

हुब्बा—मेरे साथी लछमन, झगड़ा मत करो। इस काममें खतरा अवश्य है; परन्तु तुम्हारा यह इंकार करना भी खतरेसे खाली नहीं है और उसका स्वाद मैं पहले ही चख चुका हूँ।

कंकर—सुनो। यह तो मुझे नरसिंहकी आवाज जान पड़ती है।

[नरसिंहका कुछ लोगोंको लिये हुए प्रवेश।]

कंकर—नरसिंह, समाचार तो अच्छे हैं ?

नरसिंह—यह देखो, एक दल जुटा लाया हूँ। इसके सिवाय और भी कई दल हैं जो पहले रवाना हो चुके हैं।

कंकर—तो फिर चलो। रास्तेमें और भी कुछ जुटा लिये जावेंगे।

झुण्डमेंसे एक—मैं नहीं जाऊँगा।

कंकर—क्यों नहीं जाओगे ? क्या हुआ ?

झुण्डमेंसे एक—हुआ तो कुछ भी नहीं; परन्तु मैं नहीं जाऊँगा।

कंकर—नरसिंह, इसका नाम क्या है ?

नरसिंह—इसका नाम बनवारी है। यह कमलके बीजोंकी माला बनाता है।

कंकर—अच्छा तो इससे बातचीत कर ली जाय। (बनवारीसे) तुम क्यों नहीं जाना चाहते, कहो तो ?

बनवारी—जानेकी प्रवृत्ति नहीं होती। मेरा शिवतराईके लोगोंसे कोई विरोध नहीं है। वे हमारे शत्रु नहीं हैं।

कंकर—परन्तु कल्पना करो कि हम ही उनके शत्रु हैं। इस पर भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है ?

बनवारी—मैं किसीके प्रति अन्याय करना ठीक नहीं समझता।

कंकर—अन्याय वहीं अन्याय होता है, जहाँ न्याय अन्यायके सोचनेका अधिकार या स्वातंत्र्य होता है। उत्तरकूट एक बड़ा राष्ट्र है। उसके अंशरूप रह कर जो कार्य तुम्हारे द्वारा होगा उसकी किसी तरहकी जवाबदारी तुम्हारे ऊपर नहीं रहती।

बनवारी—पर एक उससे भी बड़ा राष्ट्र है जिसके हिस्से उत्तरकूट और शिवतराई दोनों ही हैं।

कंकर—नरसिंह, देखो यह मनुष्य सवाल जवाब करता है। देशके लिए उससे अधिक हानिकारक कोई मनुष्य नहीं जो तर्क करता है।

नरसिंह—सख्त मजूरीके काममें लगा देनेसे इसकी यह तर्क करनेकी आदत मिट जायगी। इसीलिए मैं इसे घसीटकर अपने साथ लिये जारहा हूँ।

बनवारी—तब तो मैं तुम्हारे लिए एक बोझा बन जाऊँगा और तुम्हारे किसी काम न आऊँगा।

कंकर—तुम उत्तरकूटके लिए भी एक बोझे हो और हम तुमसे पिण्ड छुड़ानेका उपाय खोज रहे हैं।

हुब्बा—बनवारी चाचा, मालूम पड़ता है कि तुम उस श्रेणीके मनुष्य हो जो 'बुद्धियुक्त' कहलाते हैं; परंतु दुनियामें एक दूसरी श्रेणी भी है जो 'शक्तियुक्त' या सत्ताधारी कहलाती है। तुम दोनों श्रेणियोंवाले आपसमें सदा टकराया करते हो। सो या तो तुम भी उनका तरीका सीख लो, या अपनी बात छोड़ दो और चुप होकर बैठ जाओ।

बनवारी—और तुम्हारा तरीका क्या है भैया?

हुब्बा—मैं तो गाना गाया करता हूँ; परन्तु इस समय उससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है, इसलिए चुप हूँ; नहीं तो अब तक कभीकी तान छिड़ गई होती।

कंकर—(बनवारीसे) तो अब मुझे बता कि तेरी क्या मंशा है?

बनवारी—मैं यहाँसे एक कदम भी आगे न रक्खूँगा।

कंकर—अच्छा, तो तुझे जबर्दस्ती चलाया जायगा। बाँध लो इसे।

हुब्बा—कंकर दादा, बीचमें पड़कर मैं भी एक बात कह देना चाहता हूँ; पर मुझ पर क्रोध न करना। तुम इस आदमीके ले जानेमें जो शक्ति खर्च करोगे, यदि वह बचाकर रक्खी जा सकती, तो एक दिन 'काम' आती।

कंकर—जो लोग उत्तरकूटकी सेवा नहीं करना चाहते, उनका

दमन करना भी एक 'काम' है । अभी समय है, तुम इस बातको अच्छी तरह समझ लो ।

हुब्बा—मैंने इतनेमें ही समझ लिया है ।

(कंकर और नरसिंह को छोड़कर सब बाहर जाते हैं ।)

नरसिंह—देखो, ये विभूति आ रहे हैं । यन्त्रराज विभूतिकी जय !

[विभूतिका प्रवेश ।]

कंकर—हमारा काम धड़ाकेसे हो रहा है । लोग भी कम नहीं जुटे हैं । किन्तु तुम यहाँ कैसे ? तुम्हारी उपस्थितिमें ही तो लोग उत्सव करेंगे ?

विभूति—मुझे इस उत्सवके लिए कोई उत्साह नहीं रहा ।

नरसिंह—क्यों भला ?

विभूति—मेरी कीर्तिको कम करनेके लिए ही नन्दीघाटीके प्राकारके तोड़े जानेकी खबर आज आ पहुँची है । मेरे साथ एक प्रतियोगिता की जा रही है ।

कंकर—प्रतियोगी कौन है ?

विभूति—मैं उसका नाम नहीं लेना चाहता । तुम सब जानते ही हो । यह एक समस्या खड़ी हो गई है कि उत्तरकूटमें उसका अधिक आदर होगा या मेरा । और एक बात तुम्हें मालूम नहीं है । अभी अभी एक पक्षकी ओरसे एक दूत मेरा दिल तोड़ देनेके लिए आया था । वह इस तरहकी धमकी दे गया है कि वे मुक्तधाराका बाँध तोड़ देंगे ।

नरसिंह—वह इतनी बड़ी बात बोल गया !

कंकर—और तुमने उसे सहन कर लिया बिभूति ?

विभूति—प्रलाप-वाक्योंका प्रतिवाद ही क्या हो सकता है !

कंकर—परन्तु क्या यह उचित होगा कि अपनेको इतना अधिक सुरक्षित समझा जाय ? एक दिन तुमने ही तो कहा था कि उसमें एक दो कमजोर जगह ऐसी हैं कि यदि कोई उनका पता पा जाय तो बहुत ही सरलतासे—

विभूति—जिनको उन कमजोर जगहोंका पता है वे यह भी जानते हैं कि यदि उन्होंने उन स्थानों पर छेड़छाड़ की तो वे भी प्रवाहके साथ बह जायँगे।

नरसिंह—तब क्या यह बुद्धिमत्ता न होगी कि उन स्थानों पर रक्षक नियत कर दिये जायँ ?

विभूति—स्वयं यमराज ही उनकी रक्षा कर रहे हैं। मुझे अपने बाँधके टूटनेका जरा भी डर नहीं। मैं यदि एक बार नन्दी घाटीको फिर बन्द कर सका, तो फिर मुझे कोई दुःख न रहेगा।

कंकर—आपके लिए यह काम बिल्कुल कठिन नहीं है।

विभूति—बेशक नहीं है। मेरा यन्त्र तैयार है; परन्तु घाटी इतनी तंग है कि वहाँ अनायास ही बहुत थोड़ेसे भी आदमी अड़चनें खड़ी कर सकते हैं।

नरसिंह—अड़चनें कितनी खड़ी करेंगे ? मरते मरते भी हम चिनकर तैयार कर देंगे।

विभूति—तब तो बहुतसे मरनेवाले लोगोंकी जरूरत होगी।

कंकर—यदि मारनेवाले लोग हों, तो फिर मरनेवाले लोगोंकी कमी नहीं रह सकती।

नेपथ्यमें—जागो ! भैरव ! जागो !

[धनंजयका प्रवेश ।]

कंकर—लो देखो, जानेके लिए कदम बढ़ाते ही यह असगुन सामने आ पहुँचा ।

विभूति—वैरागी, तुम्हारी तरहके साधु सन्त, अब तक भैरव-को जगानेमें समर्थ नहीं हुए, इस कारण अब मेरी तरहके मनुष्य—जिन्हें तुम नास्तिक पाषण्ड कहते हो—उसे जगानेके लिए जा रहे हैं ।

धनंजय—यह मैं मानता हूँ कि जगानेका भार तुम लोगोंके ही ऊपर है ।

विभूति—परन्तु हमारा जगाना कुछ और ही ढंगका है । हम मन्दिरमें घण्टे घड़ियाल बजाकर या आरतीके प्रदीपोंको जलाकर नहीं जगाते ।

धनंजय—नहीं, तुम उसे (भैरवको) संकलोंसे बाँधोगे और तब वह उन संकलोंको तोड़नेके लिए जागेगा ।

विभूति—हमारी संकलें तोड़ डालना इतना सहज नहीं है । उनमें ऐंठ पर ऐंठ, गाँठ पर गाँठ दी गई है ।

धनंजय—जब कोई बात बहुत ही दुःसाध्य हो जाती है, तभी उसके लिए योग्य समय आता है ।

[पुजारियोंका गाते हुए प्रवेश ।]

जय भैरव, जय शंकर,
जय जय जय प्रलयंकर ।
जय संशय-भेदन,
जय बन्धन-छेदन,
जय संकट-संहर,
शंकर ! शंकर !

(प्रस्थान ।)

[रणजित और मन्त्रीका प्रवेश ।]

मन्त्री—महाराज ! कैम्प उजड़ गया और उसका बहुत सा हिस्सा जल गया । वहाँ जो थोड़ेसे पहरेदार थे, वे—

रणजित—पहरेदार कहीं भी हों उनकी कोई परवाह नहीं; मैं जानना चाहता हूँ कि अभिजित् कहाँ है ।

कंकर—महाराज, हम युवराजको दण्ड दिलाना चाहते हैं ।

रणजित्—क्या मैंने कभी किसी व्यक्तिको–जो दण्डके योग्य है–दण्ड देनेमें तुम्हारी प्रार्थनाकी प्रतीक्षा की है ?

कंकर—खोजने पर भी उन्हें न पा सकनेके कारण लोगोंके मनमें सन्देह हो गया है ।

रणजित्—क्या ! सन्देह ! किसके सम्बन्धमें ?

कंकर—महाराज, मुझे क्षमा करें । आपको अपनी प्रजाके मनकी अवस्था अवश्य जाननी चाहिए । युवराजके मिलनेमें जितनी ही देरी होती है, उन लोगोंका अधैर्य उतना ही बढ़कर इस सीमा तक बढ़ता जाता है कि यदि वे उन्हें किसी तरह पा सके, तो फिर दण्ड देनेके लिए आपकी जरा भी प्रतीक्षा न करेंगे ।

विभूति—महाराजके आदेशकी अपेक्षा किये बिना ही मैंने नन्दी घाटीके टूटे हुए कोटको फिरसे बनानेका काम अपने ऊपर ले लिया है ।

रणजित्—तुम यह काम मेरे ही ऊपर क्यों न छोड़ सके ?

विभूति—आप पर इस प्रकारका संदेह करना सर्वथा स्वाभाविक है कि युवराजद्वारा किये गये इस अपकीर्तिजनक कार्यमें आपका भी गुप्त हाथ है ।

मन्त्री—महाराज, जनताका मन एक ओर तो आत्मप्रशंसा और दूसरी ओर क्रोधके कारण बहुत उत्तेजित हो रहा है । अब आप अपने अधैर्यके द्वारा अधैर्यको और भी उद्दाम होनेका मौका न आने दीजिए ।

रणजित्—वहाँ वह कौन खड़ा है ? धनंजय वैरागी ?

धनंजय—मुझे यह जानकर खुशी है कि आपने मुझे भुला नहीं दिया।

रणजित्—तुम जरूर जानते हो कि अभिजित् कहाँ है।

धनंजय—नहीं। महाराज, मैं उस बातको कभी गुप्त नहीं रख सकता जिसका मुझे निश्चित पता हो और इसी लिए आफतोंमें फँस जाता हूँ।

रणजित्—तो फिर तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

धनंजय—मैं यहाँ युवराजके आनेकी प्रतिक्षा कर रहा हूँ।

नेपथ्यमें—सुमन ! सुमन ! मेरे प्यारे सुमन ! अँधेरा हो आया, सर्वत्र अँधेरा हो गया !

रणजित्—यह कौन पुकार रहा है ?

मन्त्री—यह वही पगली अम्बा है।

[अम्बाका प्रवेश।]

अम्बा—कहाँ, वह अभी तक तो नहीं लौटा !

रणजित्—तुम उसे क्यों ढूँढ़ती हो ? उसका समय आगया था, इसलिए उसे भैरवने बुला लिया।

अम्बा—क्या भैरव चुपचाप बुला ही लेते हैं ? भैरव क्या कभी वापिस नहीं करते ? चुपचाप ? रातके गहरे अन्धकारमें ?—सुमन, मेरे सुमन ! (जाती है।)

[दूतका प्रवेश।]

दूत—शिवतराईसे लोगोंकी एक बड़ी भारी भीड़ बढ़ी चली आ रही है।

विभूति—यह कैसे ? हमने तो उन्हें एकाएक आक्रमण करके पराजित

और निरस्त्र करनेकी योजना की थी। हममेंसे कोई अवश्य विश्वास-घाती है, जिसने जाकर उन्हें खबर दे दी है। कंकर, तुम्हारी मण्डलीके सिवाय तो बहुत ही कम लोग इस भीतरकी बातको जानते थे, फिर यह कैसे हुआ?

कंकर—क्यों विभूति, क्या आप हमपर भी संदेह करते हैं?

विभूति—संदेह करनेकी सीमा कहीं भी नहीं है।

कंकर—तो फिर हम लोग भी आपपर संदेह करते हैं।

विभूति—हाँ, करो। सन्देह करनेका तुम्हें अधिकार है। जो हो, समय आनेपर इसका निर्णय हो जायगा।

रणजित्—(दूतसे) क्या तुम्हें पता है कि वे क्यों आ रहे हैं।

दूत—उन्होंने सुना है कि युवराज कैद हो गये हैं, इस लिए उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जैसे बनेगा हम उन्हें खोजकर निकालेंगे। यहाँसे मुक्त करके वे उन्हें शिवतराईका राजा बनाना चाहते हैं।

विभूति—हम भी उसे ढूँढ़ रहे हैं और वे भी। देखना है कि वह किसके हाथ पड़ता है।

धनंजय—वह तुम दोनोंके ही हाथ पड़ेगा, उसके मनमें जरा भी पक्षपात नहीं है।

दूत—यह शिवतराईका नेता गणेश आरहा है।

[गणेशका प्रवेश।]

गणेश—(धनंजयसे) बाबाजी, उनका पता तो लग जायगा?

धनजय—हाँ, लगेगा क्यों नहीं?

गणेश—आप निश्चय करके कहते हैं?

धनंजय—हाँ, निश्चयपूर्वक कहता हूँ। जरूर लग जायगा।

रणजित्—अरे तुम लोग किसे ढूँढ़ रहे हो?

गणेश—लो, ये तो स्वयं महाराज ही आ गये। राजन्, आपको उन्हें छोड़ देना पड़ेगा।

रणजित्—किसे ?

गणेश—हमारे युवराजको। आपको तो उनकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु हमें बहुत आवश्यकता है–हम उन्हें चाहते हैं। क्या आप हम लोगोंका सभी कुछ रोक रक्खेंगे ? उनतकको भी ?

धनंजय—अरे मूर्खो, तुम मनुष्यको नहीं पहिचानते। उन्हें बन्द कर रखनेकी शक्ति भला किसमें है ?

गणेश—हम उन्हें अपना राजा बनाकर रक्खेंगे।

धनंजय—अवश्य रक्खेंगे। वे राजवेश धारण करके आवेंगे।

[पुजारियोंका गाते हुए प्रवेश।]

तिमिर-हृद्विदारण,
ज्वलदग्नि-निदारुण,
मरुश्मशान-संचर,
शंकर ! शंकर !
वज्रघोषवाणी,
रुद्र, शूलपाणी,
मृत्युसिन्धु-संतर
शंकर ! शंकर !

नेपथ्यमें (अम्बा)—मा पुकार रही है, सुमन! मा पुकार रही है! लौट आओ! सुमन! लौट आओ!

(दूरसे एक आवाज सुनाई देती है।)

विभूति—अरे वह क्या सुन पड़ता है ? काहेका शब्द है ?

धनंजय—यह अन्धकारकी छातीका भीतरी अंश खिलखिलाकर हँस पड़ा है।

विभूति—आः, चुप भी रहो। आवाज किस ओरसे आ रही है, बोलो तो ?

नेपथ्यमें—भैरवकी जय ! जय भैरवकी !

विभूति—(अपने सिरको पृथ्वीकी ओर झुकाकर सुनते हुए) यह तो साफ साफ झरनेकी आवाज है ।

धनंजय—नृत्यका आरम्भ हो गया है । यह उसके डमरूकी पहली आवाज है ।

विभूति—आवाज बढ़ती जाती है । बढ़ती ही जाती है ।

कंकर—यही प्रतीत होता है कि—

नरसिंह—ऐसा मालूम होता है कि—

विभूति—हाँ हाँ, इसमें सन्देह नहीं है । 'मुक्तधारा' बेगसे बह पड़ी है । उसके बाँधको किसने तोड़ दिया ?—अरे वह नहीं बचेगा ।

(कंकर, नरसिंह और विभूतिका तेजीसे प्रस्थान ।)

रणजित्—मन्त्री, यह क्या मामला है ?

धनंजय—बाँध टूटनेके उपलक्ष्यमें जो उत्सव होगा, यह उसीमें शामिल होनेके लिए पुकार हो रही है । (गाता है—)

बाजत डमरू बाजत झाँझ ।
हिरदेमें हो, हिरदे माँझ ॥

मन्त्री—महाराज, यह तो शायद—

रणजित्—हाँ, यह शायद उसीका—

मन्त्री—उनके सिवाय और किसीका तो—

रणजित्—ऐसा साहस और किसमें है ?

धनंजय—(गाता है—)

नाचत नाच चरन सहुलास ।
प्रानन ढिंग हो, प्रानन पास ॥

रणजित्—यदि दण्ड देना है तो मैं दण्ड दूँगा। किन्तु इन सब उन्मत्त प्रजाजनोंके हाथसे—मेरा अभिजित, देवताओंका प्यारा अभिजित, देवता उसकी रक्षा करें।

गणेश—बाबाजी, कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या हुआ है?

धनंजय—(गाता है—)

जागत पहर, पहरुआ दोय।
तारकमंडल झिलमिल होय॥

रणजित्—मुझे मानों यह उसकी पदध्वनि सुनाई देती है? अभिजित्! अभिजित्!

मन्त्री—मानों वही आरहे हैं।

धनंजय—(गाता है—)

मरमनि पीर, पीर प्रतिसंध।
टूटत बन्धन, छूटत बंध॥

[संजयका प्रवेश।]

रणजित्—यह तो संजय आ रहा है। संजय, अभिजित् कहाँ है।

संजय—'मुक्तधारा' का झरना उन्हें बहा ले गया। हम लोग उन्हें नहीं पा सके।

रणजित्—राजकुमार, तुम यह क्या कहते हो?

संजय—युवराजने मुक्तधाराके बाँधको तोड़ दिया।

रणजित्—समझ लिया। उसी मुक्तिके द्वारा उसने मुक्ति पा ली। झरनेको मुक्त करके वह मुक्त हो गया। संजय, क्या वह तुम्हें अपने साथ ले गया था?

संजय—नहीं, परन्तु मैंने समझ लिया था कि वे वहीं जायँगे और इस लिए मैं पहले ही चला गया और अन्धकारमें उनकी प्रतीक्षा करने

लगा। परन्तु बात वहीं समाप्त हो गई। उन्होंने मुझे पीछे छोड़ दिया और आगे न जाने दिया।

रणजित्—क्या हुआ, सो जरा और भी स्पष्ट करके सुनाओ।

संजय—बाँधकी बनावटमें जो एक जगह कमजोरी थी, उसका पता उन्हें किसी प्रकार चल गया था। उसी जगह उन्होंने यन्त्रासुर पर चोट की और यन्त्रासुरने उन्हें वह चोट तत्काल ही लौटा दी। तब 'मुक्तधारा' उनकी उस आहत देहको माताके समान अपनी गोदमें ले कर चली गई।

गणेश—हम अपने युवराजको ढूँढ़नेके लिए निकले थे, सो क्या अब हम उन्हें न पा सकेंगे?

धनंजय—तुमने युवराजको सदाके लिए पा लिया!

[भैरवके पुजारियोंका गाते हुए प्रवेश।]

जय भैरव, जय शंकर,
जय जय जय प्रलयंकर।
जय संशय-भेदन,
जय बन्धन-छेदन,
जय संकट-संहर,
शंकर! शंकर!
तिमिर-हृद्विदारण,
ज्वलदग्निनिदारुण,
मरुश्मसान-संचर,
शंकर! शंकर!
वज्रघोषवाणी,
रुद्र, शूलपाणी,
मृत्युसिन्धु-संतर,
शंकर! शंकर!

समाप्त